दहेज दानव

से सामाजिक लड़ाई लड़ी जाय

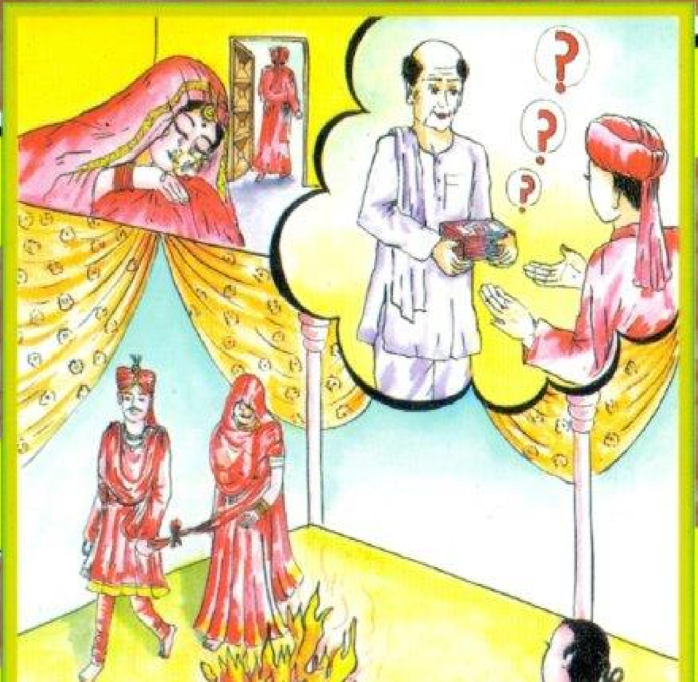

दहेज दानव से सामाजिक लड़ाई लड़ी जाय

लेखक :
पं. श्रीराम शर्मा आचार्य

卐

प्रकाशक :
युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट
गायत्री तपोभूमि, मथुरा
फोन : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९
मो. ०९९२७०८६२८७, ०९९२७०८६२८९
फैक्स नं०- २५३०२००

पुनरावृत्ति सन् २०११ मूल्य : १२.०० रुपये

लेख क्रम

क्र.	विषय	पृष्ठांक
१.	दहेज दानव से सामाजिक लड़ाई लड़ी जाय	३
२.	अनुकरणीय सत्य घटनाएँ	३
३.	लड़की मध्यवृत्ति के लड़के को दें	२४
४.	लड़का-लड़की ढूँढ़ते समय यह ध्यान रखें	२८
५.	लड़की वाले दहेज देने से इन्कार करें	३३
६.	दहेज और धूमधाम की शादियों के विरुद्ध मोर्चा खड़ा हो	३७
७.	शादियों में अनावश्यक अपव्यय न हो	४४
८.	खर्चीली शादियाँ परले सिरे की मूर्खता	४७
९.	दाँत घिसाई का दहेज	५१
१०.	दहेज लेना अत्याचार एवं देना अनाचार का प्रतीक	५४
११.	विवाह इस तरह होने चाहिए	५७
१२.	दहेज और जेवर दोनों ही समाप्त हों !	६१

दहेज दानव से सामाजिक लड़ाई लड़ी जाय

दहेज के दानव की क्रूरताएँ दिन प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही हैं । ऐसा कोई भी दिन नहीं बीतता जबकि समाचार पत्रों में दहेज हत्याओं की दो चार खबरें न छपी हों । दहेज प्रथा को रोकने के लिए आए दिन कानून बनाये जाते हैं फिर भी इस दानव की गति रुकती नहीं दिखलाई पड़ती, बढ़ती ही जाती है ।

कानून अपने स्थान पर उपयुक्त हैं, उपयोगी भी हैं । जरूरत पड़ने पर उन्हें बदला जा सकता है और बदला भी जाता है । परंतु दहेज दानव पर काबू पाने के लिए सामाजिक चेतना जाग्रत करने की आवश्यकता है । यह लड़ाई सामाजिक स्तर पर लड़ी जानी चाहिए और इसके लिए प्रबुद्ध नागरिकों, जाग्रत युवक–युवतियों को आगे आना चाहिए । ऐसे आदर्श प्रस्तुत किए जाँय जिन्हें लोग देखें, प्रेरणा प्राप्त करें और अनुकरण की दिशा में कदम बढ़ा सकें ।

प्रारंभ में हम ऐसी ही कुछ घटनाओं का जिक्र कर रहे हैं जिनसे हम कुछ सीख सकते हैं । घटनाएँ बीस–पच्चीस वर्ष पुरानी हैं, इससे भी अधिक पुरानी हो सकती हैं परंतु उनसे जो दिशा मिलती है, उसकी अभी भी सार्थकता है । कहना तो यह चाहिए कि इन घटनाओं से प्राप्त प्रेरणा की जितनी उस समय आवश्यकता थी, उससे कहीं अधिक आवश्यकता आज है ।

अनुकरणीय सत्य घटनाएँ

दस हजार मिल गए-अब बहू की आशा न करें

बुरहानपुर निवासी श्री मुंशीलाल जी अपने पुत्र का विवाह कर रहे थे । पूरा दस हजार रुपया नकद तय किया था, विवाह में बाकी साज–सामान सब अलग । पुत्र ने काफी प्रतिवाद किया, पर न माने । पत्नी ने कहा–"हम माँगकर छोटे क्यों बनें ? देने वाले का सम्मान तो सदा वैसे ही ऊँचा होता है । रुपया माँगकर हम कन्या तथा कन्या पक्ष दोनों की निगाहों में गिर जाते हैं । फिर विवाह तो दो परिवारों का एक स्नेह बंधन होता है । उसे व्यापार का साधन क्यों बना रहे हैं ?"

पर उन्हें तो धुन सवार थी कि लोग वाहवाही दें कि पुत्र का संबंध कितने ऊँचे घराने में किया है जो दस हजार रुपया नकद मिला है और पाँच-छः हजार का दहेज अलग ।

पर जिसे वे ऊँचा घर समझ रहे थे वे बेचारे बड़ी ही मुसीबत के मारे थे । कन्या उनकी योग्य, सुंदर, सुशील तथा एम०ए० पास थी । पाँच कन्याएँ अपनी अल्पायु में ही स्वर्ग सिधार चुकीं थी । अतः शीला पर-इस कन्या पर अत्यधिक स्नेह था । अच्छे से अच्छा वर ढूँढ़कर पिता ने संबंध तय किया ।

पर आजकल दहेज की बढ़ती लोलुपता के युग में 'अच्छे लड़के' बिना अच्छी कीमत दिए मिलते कहाँ हैं । सो अपना मकान अठारह हजार में गिरवी रखकर दस हजार में उन्होंने राजेश के साथ शीला का संबंध पक्का कर दिया ।

जब मुंशीलाल जी यों न माने तो राजेश ने दूसरी ही युक्ति सोची । संबंध वह तोड़ना नहीं चाहता था क्योंकि कन्या अत्यंत ही गुणवती थी ।

बारात गई । स्वागत-सत्कार भी खूब हुआ । दूसरे दिन जब बिदा का समय आया तो राजेश ने कह दिया-"आप सब जाइए । मैं कुछ साल बाद आऊँगा ।"

इस बात से सारी बारात में तथा कन्या के घर वालों में सनसनी फैल गई । मुंशीलाल जी बोले-"दिमाग खराब हो गया है क्या ?" तब राजेश ने कहा-"आपने अपने मन की बात पूरी कर ली । अब मुझे अपने मन की बात पूरी कर लेने दीजिए । मना करने पर भी आप दहेज तथा दस हजार रुपया लिए बिना न माने । आपको जो चाहिए था वह मिल गया । अब बहू मिलने की आशा करना व्यर्थ है । और मैं जानता हूँ कि पिताजी ने (शीला के) अपना मकान गिरवी रखकर आपकी ये माँगें पूरी की हैं । गिरीश अभी पढ़ ही रहा है । परिवार का सदस्य अब मैं भी बन गया हूँ उनका । जब तक कर्ज नहीं चुक जाता, मैं यही रहूँगा । पिता का उत्तराधिकारी पुत्र होता है । पिता के पाप का प्रायश्चित्त भी पुत्र को ही करना चाहिए ।"

उसका उत्तर सुनकर सभी स्तब्ध रह गए । सबने समझाया । शीला के पिता ने भी कहा-"हम अपना जैसा भी होगा करते रहेंगे । तुम्हें यों अपने पिताजी से अलग नहीं होना चाहिए ।"

पर वह न माना । आखिर सब समझदार लोगों ने समस्या का दूसरा हल निकाला । मुंशीलाल जी से कहा–"यदि आप दहेज में मिली रकम लौटाने को तैयार हों तभी हम राजेश को घर चलने को विवश कर सकते हैं ।"

मुंशीलाल जी अब सारे दाँव हार चुके थे । बेटे-बहू को नहीं खोना चाहते थे । अतः बोले–"जैसा तुम सबको उचित दिखे वैसा करो ।"

दस हजार रुपया लौटाया गया । तब कहीं राजेश घर जाने को राजी हुआ । बारात में जितने भी व्यक्ति थे सभी ने रुपया और दहेज में कीमती सामान न माँगने की बात समझी तथा कन्या पक्ष वालों की विवशता की अनुभूति की । आज के युवकों में ऐसे ही विवेकपूर्ण साहस की आवश्यकता है तभी इस दानवी कुरीति का अंत किया जा सकता है ।

दान-दहेज हो भी तो इस प्रकार

मेरठ के श्री रतनलाल जी उस समय आश्चर्य में रह गए जब उनकी होने वाली बहू-सुषमा का पत्र लेकर उसका बड़ा भाई उनके पास आया । रतनलाल जी ने कुछ दिन पूर्व ही अपने पुत्र प्रकाश का संबंध सुषमा के साथ पक्का किया था ।

पत्र में लिखा था–"पिताजी ! सादर चरण स्पर्श । आपको मेरा पत्र लिखना पता नहीं उचित लगेगा या अनुचित । पर बात ऐसी है कि मेरे विवेक ने मुझे प्रेरित किया । सत्कार्यों के लिए साहस जुटाना ही पड़ता है । मेरा आपसे एक निवेदन है । विवाह के अन्य रीति-रिवाजों के अनुसार आप जो आभूषण मेरे लिए लाएँगे उनमें जो पाँच-सात हजार रुपया आप व्यय करेंगे, उसके उपयोग के लिए मेरा एक सुझाव है । आभूषणों का दिखावा मात्र होता है । पहनें तो क्या ? और न पहनें तो क्या ? यदि इसी धनराशि को यों झूठे दिखावे के लिए व्यय न करके मेरे लिए एक छोटा सा बाल-मंदिर खुलवाने की व्यवस्था करा देंगे तो यही धनराशि हमें कुछ मासिक आय भी देती रहेगी और मेरी शिक्षा का उपयोग भी हो सकेगा । समय को देखते हुए धन को कुछ धातुओं में बदलकर संदूक में रखे रहना या अपने शरीर पर मढ़ लेना-मेरी समझ में बहुत ही खोटी मनोवृत्ति है । मुझे आभूषणों के उपयोग के प्रति कोई आसक्ति नहीं । आशा है आप इस तथ्य को ध्यानूपर्वक समझ कर मेरी प्रार्थना पर अवश्य ध्यान देंगे ।"

पत्र पढ़कर रतनलाल को पहले कुछ आश्चर्य तो हुआ पर वे बहू की दूरदर्शिता, बुद्धिमत्ता तथा सुलझे हुए विचारों से बहुत अधिक प्रभावित हुए ।

अब उन्हें यह लगने लगा कि जब व्यर्थ का दिखावा और पुराने रीति-रिवाजों में यों धन फूँकना अपने आप अपने नोटों की होली जलाना है, तब फिर क्यों न प्रत्येक अनावश्यक व्यय को ही उपयोगी बना लिया जाय ।

उन्होंने प्रकाश से इस विषय पर चर्चा की । वह भी पढ़ा-लिखा, प्रगतिशील विचारों का युवक था । बोला-"आपका कहना बिल्कुल ठीक है पिताजी ! पाँच सौ रुपये बैंड में, चार सौ आतिशबाजी तथा फुलवारी में व्यय करने की अपेक्षा हम साधारण तरीके से बारात ले जाकर इन हजार रुपयों में अपनी दुकान के लिए बढ़िया फर्नीचर खरीद सकते हैं और अपनी प्रतिष्ठा तथा ग्राहकी बढ़ा सकते हैं ।"

प्रकाश ने इसी वर्ष एम०बी०बी०एस० किया था और वह प्रायवेट प्रैक्टिस ही कर रहा था ।

तब रतनलाल ने कहा-"पर हमें अपना ही पक्ष नहीं देखना है । जब हम व्यर्थ की बातों को त्याग रहे हैं तो कन्या पक्ष पर भी किसी प्रकार का भार नहीं डालेंगे ।"

उसी दिन उन्होंने सुषमा के पिताजी को बुलाया और कहा-"आपकी विदुषी कन्या ने तो हमारी आँखें खोल दी हैं । व्यर्थ की बातों में रुपया फूँकना निश्चय ही निंदनीय तथा त्याज्य है । हम जेवर न लाकर सुषमा के लिए एक अच्छे बाल मंदिर की व्यवस्था करा देंगे और आपसे भी निवेदन है कि आप भी दिखावे तथा शान-शौकत से संबंधित सभी कार्यक्रम रद्द कर देंगे ।"

सीधे-साधे ढंग से एक धार्मिक कृत्य के रूप में पाणिग्रहण संस्कार संपन्न हो गया । इधर जेवर तथा धूम-धड़ाके के बदले बाल मंदिर खुल गया और उधर आठ-दस हजार के दहेज के स्थान पर प्रकाश की दुकान का स्वरूप विकसित करके बढ़ा दिया गया ।

यह विवेकपूर्ण कार्य जिसने देखा उसी ने दोनों समधियों की प्रशंसा की । पर रतनलाल जी अब भी इसका श्रेय सुषमा को देते नहीं थकते ।

राम झल्लाकर बोला–"तो तुम्हीं लोग रखना उसे । मुझे कोई मतलब नहीं ऐसी लड़की से ।"

माँ ने समझाया–"बेटा ! पिताजी कह रहे हैं, उनकी बात मान लेनी चाहिए तुम्हें ।"

अब राम का भी स्वर तनिक धीमा हो गया । कहने लगा–"तुम यह क्यों नहीं सोचती हो कि बीना गोरी है, सुंदर है, ठीक है । मैं न करूँगा उससे विवाह तो उसे एक से एक अच्छे लड़के मिल जावेंगे । किन्तु ऐसी लड़कियों का फिर क्या होगा जो केवल अपनी चमड़ी सांवली होने के कारण ही विवाह के बाजार में अनखरीदी ही रह जाती हैं । जीवन भर काम तो गुण ही आते हैं । रंग–रुप की वाहवाही तो बस साल दो साल की ही होती है । मैं स्वयं अपने जीवन पर यह प्रयोग करके दिखाना चाहता हूँ कि काली लड़की के साथ भी सुखी और संतुष्ट दांपत्य जीवन बिताया जा सकता है । सद्‌गुणों की सुगंध के आगे रूप की चकाचौंध कुछ भी नहीं ।"

माँ अब चुप थीं । पिताजी प्रतीक्षा में थे कि राम की सहमति मिले तब कन्या पक्ष वालों को अंतिम उत्तर दिया जाये । उन्हें मना ही करना पड़ा । घटना गोरखपुर की है ।

तभी उनके यहाँ पहुँचे श्री लक्ष्मीप्रसाद जी । अपनी कन्या के लिए संबंध माँगने । राम के पिताजी राम से बहुत असंतुष्ट बल्कि नाराज थे । गुस्से में कह दिया–"मैं कुछ नहीं जानता । आप सारी बात लड़के से ही तय कर लें ।"

राम इस स्थिति के लिए तैयार न था । पर अब तो तीसरे मनुष्य के सामने बात कही जा चुकी थी और अपने सिद्धांत की रक्षा के लिए हल्का सा विरोध इसी प्रकार सहन करना था ।

लक्ष्मीप्रसाद जी ने कहा–"मेरी कन्या इस वर्ष एम०ए० उत्तीर्ण कर चुकी है । घर के काम में बहुत ही निपुण है, स्वभाव से भी अत्यंत सरल है । हमने उसे सब प्रकार योग्य बनाने का प्रयत्न किया है । मैं अधिक क्या कहूँ । जब आकर आप लोगों की सेवा करेगी तभी उसका प्रमाण मिल सकेगा । बस कमी एक ही है, रंग उसका साँवला है । इसी कारण मुझे कई स्थानों से

निराश होकर लौटना पड़ा है । यदि आपको कोई आपत्ति न हो...... तो.....।"

और उन्होंने राम की ओर ऐसी निगाहों से देखा जैसे अपराधी फैसला सुनने से पूर्व जज की ओर देखता है ।

राम को ऐसी ही निराश, हताश दृष्टि को आशा की किरण देने की चाह थी । माँ भी वहीं बैठी थीं । राम ने कहा–"रंग-रूप की कोई बात नहीं है पिताजी ! वह तो ईश्श्वर का ही निर्मित किया हुआ होता है । उपयोगिता गुणों की होती है ।" अब लक्ष्मीप्रसाद जी को जैसे डूबते समय तिनके का सहारा मिल गया था । तत्काल बोले–"उसकी ओर से मैं आपको पूरा विश्वास दिला सकता हूँ । आपको कभी किसी शिकायत का अवसर नहीं मिलेगा ।"

एक पिता की आशा-किरण को विस्तार देता हुआ राम यह कहकर उठ गया–"मेरी ओर से माताजी आपको सब कुछ कह देंगी ।"

माँ ने सहर्ष संबंध पक्का कर लिया । आधे-आधे मन से पिताजी भी राजी हो गए । विवाह भी शुभ लग्न देखकर हो गया । आज विवाह को कई वर्ष हो चुके हैं । राम तथा मेधा का जीवन बड़ा ही सुखी है । तीन भाइयों में राम की बहू ही अब माता-पिता को सबसे अधिक प्यारी है ।

और मेधा ? उसने तो विवाह के पश्चात आश्चर्य से अभिभूत होकर राम से सर्वप्रथम यही प्रश्न किया था कि आप स्वयं इतने गोरे हैं, फिर मुझे कैसे पसंद कर लिया ? राम मुस्करा भर दिया उस समय । पर मेधा को अब अच्छी तरह मालूम पड़ा कि राम तन की नहीं, मन की गोराई का पारखी है ।

आदर्श, आदर्श ही निकला

राजेन्द्र ने आदर्श के कंधे को हिलाते हुए कहा–"क्या पागल हो गए हो ? या जमाने में पढ़ी-लिखी लड़कियाँ नहीं रह गई हैं ?"

आदर्श भारी स्वर में बोला–"नहीं राजेन्द्र ! यह बात नहीं, न तो मैं अभी पागल ही हुआ हूँ और न जमाने में पढ़ी-लिखी लड़कियों का अभाव ही हुआ है । मेरा उद्देश्य कुछ और ही है ।"

घटना कानपुर शहर की है । राजेन्द्र आदर्श का अभिन्न मित्र है । आदर्श इसी वर्ष एम०ए० प्रथम श्रेणी में करके लैक्चरर हुआ है । अब विवाह का प्रश्न हल होने का समय भी आ गया था । अतः माता-पिता ने कई कन्याओं के पिताओं द्वारा आए हुए प्रस्ताव उसके समक्ष अंतिम निर्णय के लिए रखे

थे । लड़कियाँ सभी अच्छे घरों की, सुंदर, पढ़ी-लिखी थीं ।

किन्तु आदर्श ने जब समस्त प्रस्तावों को अस्वीकृत करते हुए अपनी यह इच्छा प्रगट की कि वह एक अत्यंत अल्प शिक्षिता कन्या से विवाह करेगा तो सभी के आश्चर्य का ठिकाना न रहा ।

पिताजी ने कहा-"लगता है तुम्हें किसी ने भड़काया है । और अगर कोई अनपढ़ पसंद ही आ गई है तो बात दूसरी है । वरना बिना डिग्री प्राप्त किए लड़का हो या लड़की, बैठने-उठने तक की तो तमीज आती नहीं । और फिर चार मिलने वाले और रिश्ते-नातेदार क्या कहेंगे कि कुपढ़ गले बाँध दी लड़के के ।"

माताजी का भी यही कहना था कि तुम इतने पढ़-लिख गए हो तो बहू भी तुम्हारे अनुरूप ही होनी चाहिए ।

पर जब वह अपने हठ से न डिगा तो उन्होंने उसके मित्र राजेन्द्र से कहा कि वह उसे समझाए ।

राजेन्द्र ने फिर जैसे खुशामद सी करते हुए कहा-"फिर बात क्या है, बतला दे मेरे भइया ।"

आदर्श ने कहना प्रारंभ किया-"माताजी और पिताजी तो नहीं समझ सकेंगे मेरी बात को । पर तुम तो समझ सकते हो राज ! पढ़ी-लिखी लड़कियों को हजारों पढ़े-लिखे लड़के मिल जाते हैं । पर जो किन्हीं मजबूरियों या कारणों से अपना बौद्धिक विकास नहीं कर पातीं, परिस्थितिवश उच्च शिक्षा ग्रहण नहीं कर पातीं, उन्हें तो भाग्य के भरोसे किसी कम शिक्षित के साथ ही जीवन का गठ-बंधन करना पड़ता है । क्यों न एक ऐसी ही अविकसित कली को लाकर उसका विकास किया जाय । एक दबी हुई, सोई हुई प्रतिभा को आगे बढ़ाने का, खिलाने, उगाने और विकसित करने का काम किया जाय तो शायद वह श्रेयकारी कार्य ही होगा ।"

अब राजेन्द्र भी कुछ गंभीर हो गया, बोला-"कहते तो तुम ठीक हो, पर सोचो जरा, सारी उम्र जो वो हँसने-खेलने की, विनोद करने की होती है, उसमें उसे पढ़ाते ही रहना बैठे-बैठे ।"

अब आदर्श बोला-"उसकी चिंता मत करो । वह सब मन का भ्रम जाल है । मेरा अपना यह निश्चय है और बदला नहीं जा सकता है । कह देना पिताजी से । रहा प्रश्न विनोद का सो मेरे दोस्त ! पत्नी में अपना संचित ज्ञान

भरकर योग्य बनाने में ही मेरा विनोद सबसे अच्छा होगा ।"

अब राजेन्द्र ने हथियार डाल दिए और आदर्श का विवाह एक सातवीं कक्षा तक पढ़ी सुशील कन्या के साथ हो गया ।

सबके मुँह पर एक ही बात आई उस समय जब विवाह के ७ वर्ष पश्चात उसकी पत्नी नीला ने बी०ए० की डिग्री ले ली कि लड़का आदर्श वास्तव में ही आदर्श निकला ।

बड़े भाई की भूल छोटे ने सुधारी

रतनपुर के भोपाल सिंह नेगी की कन्या का संबंध साम्भी के रईस चतुरी सिंह के ज्येष्ठ पुत्र शिवबहादुर के साथ निश्चित हुआ । लड़का साम्भी में ही एक होटल चलाता था । विवाह ५ हजार रुपये में निश्चित हुआ । उसके साथ कन्या पक्ष के लिए एक शर्त यह भी जोड़ी गई थी कि अगवानी के समय के लिए बढ़िया से बढ़िया बैंड-बाजे का प्रबंध भी होना चाहिए ।

लड़की के पिता को दहेज की रकम जुटाना ही कठिन था, जब बाजे वालों से बात की तो पता चला कि अच्छा बैंड सात-आठ सौ से कम में नहीं पड़ता था, सो उनने साधारण बाजा कर लिया ।

बारात आई । लड़के का पिता तो कुछ न बोला, पर लड़का साधारण बाजा देखकर आग-बबूला हो गया । जितना गरम हो सकते थे, गरमाए । किसी तरह अगवानी हो गई तो भाँवरों के समय ही लेन-देन के मामले में चख-चख हो गई । दो परिवारों को आत्मीयता के एक सूत्र में बाँधने वाला विवाह संस्कार अपने देश में ऐसा विकृत हो गया है कि अधिक से अधिक एक प्रतिशत विवाह ही बिना किसी झगड़े के संपन्न होते होंगे । लेन-देन वाले जितने भी विवाह होते हैं उनके प्रारंभ और अंत: प्राय: झगड़ों में ही होते हैं । कई बार तो उनके बड़े ही दु:खद परिणाम देखने में आते हैं । तब यह लगता है कि क्या यही वह भारतीय विवाह हैं जिन्हें अपने आध्यात्मिक होने का इतना गौरव है ।

तय यह था कि भाँवरों से पूर्व सारा दहेज चुका देना होगा पर श्री भोपाल सिंह परिस्थितिवश कुल रकम इकट्ठी नहीं कर सके । लड़के का मिजाज पहले ही गर्म था, एक हजार रुपये कम देखकर उसका पारा सातवें आसमान पर चढ़ गया । उसे ऐसा अखरा जैसे १ हजार रुपये कम देकर उसकी कीमत घटा दी गई हो ।

बारातियों ने बहुतेरा समझाया पर वह राजी न हुआ । विवाह मंडप से यह कहकर निकल आया–"जब तक कुल रुपये अदा नहीं होते, भाँवरें नहीं होंगी, नहीं तो कोई और लड़का तलाश कर लो ।"

अधिकांश बाराती इस पक्ष में थे कि जैसे भी हो अब विवाह कर लेने में ही अच्छाई है । अंततः संबंधी होना ही है तो थोड़े से लालच के लिए क्यों झगड़ा किया जाय । लड़के के पिता को तो आपत्ति नहीं थी पर लड़का अपनी जगह से एक इंच भी न खिसका ।

बताते हैं इस पर उसके छोटे भाई रामबहादुर ने, जो उस वर्ष बी०एससी० फायनल का छात्र था, समझाया–"भैया ! मानलो तुम्हें अपनी बहन का विवाह करना होता और कर्ज काढ़कर भी दहेज की रकम पूरी न कर सकते तो सोचिए तुम पर कैसी बीतती । जो मिला सो ठीक, अब और अधिक तंग करना अच्छा नहीं ।"

छोटे भाई के उपदेश ने क्रोधाग्नि में उफान पैदा कर दिया । उसने झिड़ककर कहा–"तुझे इतनी हमदर्दी है तो खुद भाँवरें कर ले ।" छोटा भाई बड़ी देर तक समझाता रहा पर जब वह बार-बार वही कटु शब्द कहता रहा तो छोटा भाई स्वयं जाकर मंडप में बैठ गया । गाँव वाले बड़े भाई की ढिठाई से पहले ही तंग आ चुके थे । विवाह की रस्म अदा की गई और भाँवरें छोटे भाई के साथ ही फेर दी गईं । बड़ा भाई वहाँ से खिसककर चुपचाप घर चला आया ।

पता चला कि बाद में उसने घर से बँटवारा कर लिया और अब अकेला ही रहने लगा । छोटा भाई अपनी पत्नी के साथ सुखी जीवन बिताता रहा जबकि उसकी शादी के लिए प्रस्ताव लेकर कोई नहीं आया । सब कहते कि ऐसे से कौन करेगा विवाह, कहीं दहेज के लोभ में वह पत्नी को ही न मार डाले ।

बिकी वस्तु पर क्या अधिकार ?

एम०एस० करने के बाद इधर लड़का अपने ही शहर दौलताबाद में प्रैक्टिस शुरू करने जा रहा था उधर उसके पिता ने उसकी शादी की बात शुरू कर दी । जिस दिन लड़की के पिता जुगराजपुर के श्री नीलाम्बर शास्त्री अपनी कन्या का संबंध तय करने आए, युवक कुल भूषण पाठक घर पर ही थे । पिता श्री कमलेश नारायण पाठक ने दहेज की बातचीत की तो उसे बुरा लगा, उसने

कहा–"पिताजी ! आप जैसे शिक्षित–समझदार आदमी को तो दहेज जैसी दुष्ट परंपरा का समर्थन नहीं करना चाहिए । खेद है कि आप भी दहेज माँगते हैं । सोचिए २० हजार रुपये देकर जो अपनी कन्या का विवाह आपके घर करेगा वह इतने रुपये बैंक में जमा करके अपनी कन्या के लिए पति नौकर नहीं रख सकता क्या ? पति पढ़ा–लिखा हो यही क्या आवश्यक है ?"

श्री कमलेश नारायण जी एक जमाना देख चुके थे । लड़के की सीधी–सादी बात उनके पल्ले कैसे पड़ती । उन्हें क्या पता था कि बहू अपने घर की शोभा और मेहमान होती है । उसका मोल भाव नहीं करते, वरन् आदर देकर लाया जाता है । अभी तक तो लड़की के पिता से ही झक–झक हुई थी, अब लड़के पर बरस पड़े–"लल्ला ! पूरे बीस हजार तुम्हारी पढ़ाई में खर्च किए हैं, श्वसुर की इतनी हमदर्दी, स्त्री से इतना प्यार है तो तुम चुका दो न ?"

युवक ने स्थिति की गंभीरता को परखा । आगे कुछ नहीं बोला । दरवाजे मेहमान बैठे हों तब आपस में झगड़ने की शोभा भी नहीं थी, चुप हो गया ।

श्री शास्त्री के एक ही कन्या थी । सोचा थोड़ी जमीन है उसे बेच देंगे, ८–१० हजार के जेवर आदि हैं, वह बेच देंगे । दो–चार हजार ऋण ले लेंगे । इनका कोटा पूरा हो जाएगा । लड़की तो सुख में रहेगी । समाज में एक ओर कन्याओं के लिए अपना रक्त निचोड़ देने का यह आदर्श और दूसरी ओर लड़के के नाम पर रकम ऐंठने का वह कसाईपन । एक कितना करुणाजनक दूसरा कितना हृदयहीन । भगवान जाने इस चक्की में देश कब तक पिसता रहेगा ।

संबंध तय हो गया । श्री नीलाम्बर शास्त्री ने २० हजार देना स्वीकार कर लिया । लगन निश्चित हो गई । बरात आई । जो कुछ आवभगत हो सकती थी, शास्त्री जी ने की । कपड़े–लत्ते, अलंग–पलंग, नेग–न्यौछावर हँसी–खुशी देकर बरात बिदा कर दी ।

श्री कमलेश नारायण जी पाठक भेंट पाया हुआ सारा सामान लेकर चलने लगे पर लड़का जहाँ बैठा था वहीं बैठा रहा । उन्होंने रौब में तथा कुछ व्यंग्य में कहा–"बेटा ! ससुराल बहुत प्यारी लग रही है, घर चलने का इरादा नहीं है क्या ?"

लेकिन तब पुत्र की गंभीरता देखते ही बनती थी । उसने कहा–

"पिताजी ! दहेज की आखिरी किश्त न चुकने तक मैं आपका बेटा था और अब जब आप सारी रकम पा चुके तो मुझ पर अधिकार शास्त्री जी का हो गया । अब मुझ पर इनका स्वामित्व है । जो कुछ बन पड़ेगा कमाऊँगा, इनके पास रहूँगा और इनकी सेवा करूँगा ।" यह कहकर अपनी नव विवाहिता धर्मपत्नी से कहा-"जाओ अंदर, अब हम यहीं रहेंगे ।"

पाठक जी सिर धुनते रह गए, लड़का न लौटा । बारात वापस लौटी । गाँव की स्त्रियाँ दरवाजे पर बहू का मुँह देखने को खड़ी थीं पर देखने को दूल्हा भी न मिला । बेचारीं सिर पटककर रोईं-"हाय रे दहेज ! तूने हमारा बेटा भी हमसे छीन लिया ।" लड़के ने किसी की परवाह न की और निश्चय किया जब तक विवाह में खर्च हुई रकम कमाकर लौटा न देंगे तब तक वह घर न लौटेगा । शिक्षित समाज की इस शुरूआत का ऐसा अंत ! क्या यह दहेज लेने वाले सोचेंगे । अभी तो युवा रक्त धीरे-धीरे गर्म हो रहा है ।

दहेज खोरों की अक्ल यों ठिकाने लगेगी !

२५ जून, ७० को पंजाब में एक जैन परिवार में विवाह था । विवाह तो संपन्न न हो सका, उल्टे एक सनसनी खेज नाटकीय दृश्य प्रस्तुत हो गया । लड़की वाले के दरवाजे पर बारात आ चुकी थी । घराती बरातियों का स्वागत कर चुके थे । भोजन के लिए पंगत बैठ चुकी थी । कुछ दूसरी बारी में बैठने की राह देख रहे थे । इसी समय पाणिग्रहण के मंडप के नीचे लड़के के पिता देन-लेन की सौदेबाजी में लगे हुए थे । लड़के के पिता की लालच से लार टपक रही थी । वह टेलीविजन सेट व फिएट कार के लिए लड़की के पिता पर दबाव डाल रहे थे । लड़की का पिता गिड़गिड़ा रहा था, अपनी मजबूरियाँ जाहिर कर रहा था । दूल्हा भी यह सब देख रहा था । सोचता था कि जो कुछ भी मेरे पिता कर रहे हैं, वह ठीक ही है क्योंकि वे अनुभवी हैं और जो कुछ भी कदम उठा रहे हैं, वह मेरे हित में ही है । लड़की के पिता एक वकील के मामूली मुहर्रिर थे और पहले ही उन्होंने अपनी हैसियत से ज्यादा दहेज व उपहार का सामान जुटाया था । रेडियो, सिलाई मशीन, साइकिल, डाइनिंग सेट, सोफासेट, अलमारी आदि सभी कुछ था । लेकिन लड़के का अनुभवी पिता जानता था कि आखिरी बूँद तक तेल निकालने के लिए तिलों को बेरहमी से कसकर निचोड़ना होता है । इसी कशमकश और खींचातानी में

लड़के का पिता अपने समधी को शब्द–अपशब्द, कहनी न कहनी सब कुछ कह गया और अंत में अचूक रामबाण भी उसने छोड़ दिया । बोला–"अब आप कान खोलकर सुन लीजिए कि भाँवरें तब पड़ेंगी जब कार व टेलीविजन का रुपया नकद मिल जाएगा ।" लड़की सारी बातें सुन रही थी । अपने कारण पिता का इतना घोर अपमान और दुर्दशा उसे सहन नहीं हो रही थी । उसने पिताजी को अपने पास बुलाया और उन्हें अपना दृढ़ व अटल फैसला सुना दिया । वह बोली–"पिताजी ! मैंने तय कर लिया है कि मुझे विवाह नहीं करना है ।" सभी ने बहुत समझाया–बुझाया पर उसने किसी की एक न सुनी । दुल्हन के उसी साज–सिंगार में फिर वह धीरे से लड़के के पिता व बारातियों के सामने आई और मृदुल कंठ व विनीत स्वर में दोनों हाथ जोड़कर बोली–"मैं माफी चाहती हूँ आप सब लोगों से । मैंने निश्चय कर लिया है कि मुझे यह रिश्ता नहीं करना है । मैं बालिग हो गयी हूँ और मुझे कानूनी अधिकार है कि मैं इस मामले में आत्म–निर्णय कर सकूँ । मैं अपने पिता की इतनी बेइज्जती सहन नहीं कर सकती । इसलिए अब आप लोग अपने घर वापस चले जाइए ।" चारों ओर सन्नाटा छा गया । सब अवाक् रह गए । ऐसा लगा कि जैसे लड़की ने लड़के के पिता और सब बारातियों के मुँह पर कसकर तमाचा मार दिया हो । लेकिन लड़की का क्रोध अभी शांत नहीं हुआ था । उसने बाद में कठोर शब्दों में लड़के वालों को खूब फटकारा । फिर दूल्हे मियाँ से उसने कहा–"मैं तो समझती थी कि मैं एक सुशिक्षित प्रोफेसर से संबंध कर रही हूँ । मुझे क्या पता था कि आप इतनी गिरी हुई स्वार्थी मनोवृत्ति के व्यक्ति हैं ।" अब तो पांसा पलट गया था । लड़के के पिताजी ढीले पड़ चुके थे । उन्हें बिना दुल्हन लिए घर जाना बहुत अपमानजनक महसूस होने लगा । उन्होंने सारी माँगें वापस ले लीं । लेकिन लड़की टस से मस न हुई । अपने पितृ–पक्ष की ओर से आग्रह करने वाले आत्मीयजनों को भी उसने समझा दिया कि देखिए, यदि मैं आप लोगों की बात मानकर इनके साथ चली जाऊँ तो बाद में ये गिरी हुई मनोवृत्ति के लोग मुझसे गिन–गिनकर बदला लेंगे । अंततः बारात बिना दुल्हन के वापस चली गई । जो लोग खाना नहीं खा सके थे, वे भूखे ही चले गए । लड़के के मित्रों ने, जो कि बारात में आए थे, लड़के का फब्तियाँ कसकर खूब मजाक उड़ाया । उधर लड़की की सहेलियों ने उसके साहस की भूरि–भूरि प्रशंसा की । हम भी उस बहन को

प्रणाम करते हैं जिसने दुर्गा-भावनी का प्रखर रूप प्रकट कर यह सिद्ध कर दिया कि नारी अबला ही नहीं है, सबला भी है । एक भारी कुर्बानी देकर उसने उस लालची पिता को अच्छा सबक सिखा दिया ।

इसी किस्म की एक घटना कई वर्ष पहले कानपुर में भी हुई थी । यह घटना और भी सनसनी खेज है । वहाँ के एक सक्सैना परिवार में विवाह संपन्न हो चुका था । लड़की के बिदा होने का समय था । दहेज पर विवाद खड़ा हो गया । बेटे के पिता ने धमकी दी कि यदि इच्छित वस्तुओं का या उसकी एवज में नगदी का इंतजाम तुरंत नहीं हो जाता तो हम लड़की को यहीं छोड़ जाएँगे । विवाद का जब कोई हल न निकला और बात हद से गुजर गई तो लड़की का स्वाभिमान सोए हुए नाग की तरह फुसकार उठा । पिता बेचारा बिदा के आँसू बहा रहा था और समधी के उस गिरे हुए व्यवहार से घोर संकट में पड़ा हुआ था । लड़की ने पिता से कहा-"आप बिल्कुल मत घबराइए । मैं इन लोगों के साथ हरगिज नहीं जाऊँगी ।" फिर बाहर आकर सरेआम उसने अपना निर्णय सुना दिया । साथ ही यह सवाल भी किया कि क्या बारातियों में से कोई युवक मुझसे अभी आज ही विवाह करने को तैयार है ? जबाव में एक युवक सामने आया और नम्र भाव से बोला कि विवाह करने को तो मैं तैयार हूँ लेकिन आप तो सुशिक्षित एम०ए० हैं और मैं हूँ केवल मैंट्रिक पास एक क्लर्क । लड़की ने कहा-"कोई परवाह नहीं है । मैं कमाऊँगी और आपको पढ़ाऊँगी । आप चिंता न करें ।"

तुरंत ही उस युवक के साथ लड़की की दोबारा भाँवरें पड़ गयीं और पहली बारात बिना दुल्हन के घर वापस हो गई । इस बहन को बार-बार प्रणाम ।

समाज में बार-बार ऐसी घटनाएँ होंगी, तभी इन लालची दहेज खोरों की अक्ल ठिकाने लगेगी । इसके लिए अब स्वयं लड़कियों को साहस से काम लेना होगा । तभी समाज को खोखला कर देने वाला यह महारोग मिट सकता है ।

पढ़े-लिखे लड़के भी, यदि उनमें कुछ भी स्वाभिमान है, तो इस वर बिक्री की घृणित और निर्दयतापूर्ण प्रथा को उखाड़ फेंकने का संकल्प करें और विवाह में पैसे का नहीं अपनी पसंदगी की, अपने विचार, स्वभाव और रुचि से मेल खाने वाली सुशील लड़की से ही बिना दहेज या ठहरौनी के

विवाह करने का प्रण करें । समाज को इस महाभयंकर शोषणकारी राक्षसी प्रथा से बचाने का उत्तरदायित्व आज के पढ़े-लिखे नवयुवकों पर ही है ।

नवयुवकों का ही यह कर्तव्य है कि मूढ़ताग्रस्त ऐसे लोभी निर्दय और मूढ़ पिताओं की जो दहेज के नाम पर समाज को नष्ट करने पर तुले हुए हैं, अनेक निरीह लड़कियों के जीवन को नीरस और दु:खद बना रहे हैं, उनकी अवहेलना कर दहेज प्रथा के विरुद्ध धावा जरूर बोल दें और समाज से उसका मूलोच्छेद कर निरीह कन्याओं का उद्धार करें तथा देश के इस कलंक को सदा-सर्वदा के लिए मिटा कर रहें ।

दहेज लोलुप वर ऐसे ही ठीक होंगे

गुड़गाँव, तहसील रिवाड़ी के ग्राम माजरा सेराज से एक बारात जिला रोहतक के एक ग्राम में आई । विवाह की सभी रस्में ठीक से संपन्न हो गईं पर चलते समय थोड़ी सी बात पर कहा-सुनी हो ही गई । गाँव के कितने ही सम्भ्रांत व्यक्तियों ने दोनों पक्षों के लोगों को एकत्रित कर उस गुत्थी को सुलझाने की कोशिश की, पर वह कहाँ सुलझ पाई ।

वर पक्ष अपने सम्मान तथा समाज में प्रचलित परंपराओं हेतु विवाह में खर्च करने के लिए कई हज़ार रुपये की व्यवस्था हेतु विवश होता है । यदि बाजे, आतिशबाजी, जेवर और दावत के आयोजनों को समाप्त कर दिया जाए तो बहुत थोड़े रुपयों में शादी का पुनीत कार्य संपन्न हो सकता है । चढ़ावे के हजार पाँच सौ रुपये के कपड़े ले जाने से भी तो कोई लाभ नहीं । नित्य के जीवन में ३०-४० रुपये की धोतियाँ ही मध्यम श्रेणी के परिवारों में पहनी जाती हैं, २००-३०० रुपये की साड़ियाँ दिखावे के लिए ले जाने के पीछे कोई मुख्य उद्देश्य भी तो नहीं दिखाई देता ।

लड़के वाले जहाँ अपनी इज्जत के लिए बरबाद होते हैं वहाँ लड़की वालों की भी तमन्ना रहती है कि हमारे यहाँ बारात ऐसी शान से चढ़े कि आसपास के दस-पाँच गाँव के लोग देखने आएँ और सराहना करें । इस झूठी प्रशंसा के लिए कन्या पक्ष वालों को कितना मूल्य चुकाना पड़ता है इसे तो कोई भुक्त भोगी ही जानता होगा ।

जितनी धनराशि तय हुई थी उतनी वर को न दी जा सकी । लड़की के पिता हाथ-पैर जोड़ते रहे, अपनी मजबूरी पर आँसू बहाते रहे, पर उसका कोई

असर नहीं हुआ । जिन साधनों से रुपया एकत्रित करने की योजना थी वह सफल न हो सकी । निश्चित समय लड़की के पिता को शर्मिंदा होना पड़ा और वायदे के अनुसार रुपये उधार न प्राप्त कर सका ।

बारात की बिदा हो गई । रास्ते में उन्होंने वधू को उतार दिया । बारातियों पर इतना भी नहीं बना कि वह इस कार्य का विरोध करते और समझाते- बेचारी बहू की क्या गलती है जो दहेज में प्राप्त कम धनराशि के लिए यहीं से यातनाएँ दी जा रही हैं । आजकल बाराती भी लड़की वाले पर रौब दिखाने और अपने बड़प्पन का प्रदर्शन करने जाते हैं । उन्हें अपनी हँसी-मजाक, खाने और घूमने से ही कहाँ समय मिल पाता है । यदि दस-पाँच बारातियों ने भी लड़के और उसके पिता से बहू को न उतारने के लिए निवेदन किया होता तो शायद उनकी इतनी हिम्मत न पड़ती ।

गाँव वालों को जैसे ही इस घटना की जानकारी मिली, उन्होंने तुरंत बारात का पीछा किया और सारे बारातियों को घेर लिया । सभी का सामान छीन लिया गया । पूरा गाँव जहाँ जुड़कर आ गया हो वहाँ बीस-पच्चीस बारातियों की चल भी कैसे सकती थी ? सभी लोग उस बहू को तथा समस्त बारातियों को अपने साथ वापस ले आए । बारातियों को फिर उसी जनमासे में ठहरा दिया गया । आसपास के कई गाँवों के मुख्य मुख्य व्यक्तियों को बुलाकर पंचायत जोड़ी गई । पंचायत ने दूध का दूध और पानी का पानी कर दिया । उसने यह निर्णय दिया कि वर के पिता कन्या पक्ष के सारे खर्च का अभी भुगतान करें । कन्या के पिता को सारा खर्च दिलवाया गया और तब बिना बहू के उस बारात की बिदा कर दी गई ।

खुशी-खुशी आई हुई बारात बैरंग लौट गई और रास्ते में बहू को उतार कर शेष रुपया वसूल करने की योजना पूरी तरह असफल हो गई । दहेज लोलुप वर जब बातों से न मानें तो ऐसे साहसपूर्ण कदम उठाकर ही उनकी अक्ल ठीक करनी चाहिए ।

दहेज लोलुप तो इसी प्रकार ठीक होंगे

जरहट (राजस्थान) के एक शिक्षित नवयुवक दाऊदयाल ने अपने साहस के बल पर समाज सुधार का एक अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत कर रूढ़िवादियों को चेतावनी दे दी कि वे शीघ्र ही अपना सुधार कर लें नहीं तो आने वाली पीढ़ी को विद्रोह करने पर विवश होना पड़ेगा और रूढ़िवादी दुष्प्रवृत्तियों का क्या परिणाम होगा, यह कुछ नहीं कहा जा सकता ?

घटना इस प्रकार सुनी गई है कि उक्त एम०ए० पास नवयुवक की बारात द्वार-चार के लिए तैयार हो रही थी कि सहसा उसका पिता आपे से बाहर चिल्लाता सुनाई दिया-"यह तो साफ धोखा है, मैं कदापि छः महीने के लिए नहीं ठहर सकता । अब यह विवाह नहीं हो सकता और बारात अभी वापस जाएगी ।"

बाराती द्वार-चार के लिए तैयार होते-होते रुक गए । किसी को पता न चल रहा था कि आखिर माजरा क्या है । बोहरा साहब क्यों और किससे नाराज हो रहे हैं । लोगों में एक विघ्न जैसी उत्सुकता और बेचैनी फैल गई और वे पता लगाने को उद्यत हुए । तब तक देखा और सुना कि एक आदमी हाथ जोड़े हुए बोहरा साहब के पीछे गिड़गिड़ाता हुआ आ रहा है । यह बेटी का बाप था । कह रहा था-"समधी साहब ! मेरी प्रार्थना तो सुन लीजिए, मैं आपका एक-एक पैसा चुकता कर दूँगा । बात यह हुई कि ग्यारह हजार तिलक में देने के बाद केवल दो हजार रुपये ही रह गए हैं । मैंने बहुत कुछ कोशिश की कि मकान पंद्रह हजार में गिरवी रख जाए । लेकिन तेरह हजार से ज्यादा न मिल सके । सोचा था कि दो हजार आप सबकी खातिरदारी करने के लिए रहने दूँगा और दो हजार से द्वार की शोभा करके आपके तेरह हजार पूरे कर दूँगा । लेकिन जरूरतमंद को तो सब दबाते ही हैं । तेरह हजार से ज्यादा न मिल सके । आप प्रसन्नता से बेटा ब्याह ले जाइए, दो हजार का मैं देनदार हूँ, सो छः महीने के भीतर ही चुका दूँगा । आप बारात द्वार पर लाइए, मैं चलकर अगवानी की तैयारी करता हूँ ।"

किन्तु वर का पिता तो धन का पिशाच था, गरज कर बोला-"काम निकल जाने पर कौन अपना वचन पूरा करता है । मुझे जरा भी विश्वास नहीं । तेरह हजार अभी पूरे कर दो तब बारात द्वार पर जाएगी ।"

कन्या के पिता ने फिर प्रार्थना की–"बारात ले चलिए, मेरी बदनामी हो रही है । बेटी का जीवन खराब हो जाएगा, कुल में दाग लग जाएगा । अब तो आखिर हम आपके संबंधी हो चुके हैं ।" किन्तु वर के पिता का पत्थर हृदय न पसीजा और बारात वापस चलने के लिए कह दिया । कन्या के पिता ने एक बार गीली आँखों से वर की तरफ देखा और कहा–"भगवान की इच्छा, कन्या का भाग्य है । मैं मजबूर हूँ, कर भी क्या सकता हूँ ।"

इतना कहकर कन्या का पिता वापस जाने लगा । तभी एक आवाज गूँजी–"पिताजी ! आप निश्चिंत रहिए ।" वर स्वयं अपने श्वसुर से कह रहा था–"सारी बारात चली जाए, पिताजी भी चले जाएँ, मैं अकेला द्वार पर आता हूँ और अब एक छदाम लिए बिना ही विवाह करूँगा और हो सका तो आपका वह भी रुपया वापस कराऊँगा जो आप दे चुके हैं ।"

पुत्र की वाणी में विद्रोह का भरपूर तेज था जिसके सामने उसका पिता टिक न सका और अपनी सारी जिद भूल गया, समझौते के स्वर में बोला–"मैं तो बेटा ! तुम्हारे ही हित के लिए लड़ रहा था ।"

आखिर विवाह संपन्न हुआ । उसने घर पहुँच कर बाप से वह रकम वापस करा दी, जो श्वसुर ने मकान गिरवी रखकर दहेज में दी थी । वर की इस उदारता की हर व्यक्ति ने सराहना की और यह चर्चा दूर-दूर तक फैल गई है । अब इस क्षेत्र में वृद्ध दहेज तय करने से पूर्व बार-बार यह सोचते हैं कि कहीं उनका लड़का भी विद्रोह न कर बैठे और जो बिना ठहराये मिल सकता है, उससे भी हाथ न धोना पड़े ।

दुल्हन एक-बारातें तीन

चोट खाया हुआ साँप काटने को ही दौड़ता है, उससे भलमनसाहत की आशा करना व्यर्थ है । विवाहोन्माद से पीड़ित समाज की भी यही स्थिति है । यदि इस प्राणघाती समस्या का समाधान नहीं हुआ तो ऐसी दुर्घटनाएँ गाँव-गाँव होंगी जैसी अम्बियापुर तहसील के गाँव होरहटा में घटित हुई ।

गाँव के मुखिया श्री भवानीदीन को अपनी पुत्री की शादी करनी थी । दो वर्ष तक कई सौ घरों में गए । 'मुखिया माने बैंकपति'–जिसके दरवाजे गए उसी ने उन्हें करेंसी छापने की मशीन समझा, किसी ने भी दहेज में दस-बीस हजार से कम की माँग नहीं की । लोगों को क्या पता था कि तीन और बेटियों

का विवाह करके भवानीदीन अपनी सारी संपत्ति स्वाहा कर चुके हैं, बेचारे किसी तरह अपना और बाल-बच्चों का पेट भर पालते हैं ।

भारतवर्ष की औसत आमदनी प्रति व्यक्ति अधिक से अधिक पचहत्तर नए पैसे प्रतिदिन की है, इतने से एक समय का पेट भरा जा सकता है, अधिक नहीं । ऐसी स्थिति में ग्रामीण परिवार कितना बचा सकते होंगे इसका सहज ही अनुमान किया जा सकता है । गाँवों के ९५ प्रतिशत विवाह कर्ज लेकर होते हैं और इस तरह हर दो बेटियों का विवाह करने वाला बाप कर्ज में ही जीता और कर्ज में ही मर जाता है । पर अपने समाज में इतनी दया और सहानुभूति तक नहीं आती कि वह बच्चियों के संबंध बिना कुछ लेन-देन के स्वीकार करता और दहेज के दानव को उग्र न होने देता ।

भवानीदीन तंग आ गए । लड़की २० की हो गई । अशिक्षित समाज में १६ पार करना ही पाप होता है, बीस तो हद थी । तब आखिर उन्होंने एक विचित्र रास्ता निकाला । क्षुब्ध और झुँझलाए व्यक्ति यदि ऐसा ही कुछ अनुचित करने लगें तो उन्हें बहुत दोष नहीं दिया जा सकता ।

उन्होंने तीन गाँवों में संबंध निश्चित कर दिए । बारात की तिथियाँ तीनों की एक ही रखीं । जिसने जितनी माँग की उतना ही देना उन्होंने स्वीकार कर लिया । शर्त एक ही थी कि सारा दहेज भाँवरों के समय चुकाया जाएगा ।

एक बार तो सारे गाँव में स्तब्धता सी छा गई । एक ही लड़की के लिए तीन-तीन वर, तीन-तीन बारातें ? गाँव के सब लोगों को मुखिया ने पहले ही सब बातें बता दी थीं । इस कुटिल कुप्रथा के विरुद्ध सब मुखिया के साथ हो गए । तीनों बारातें अच्छी प्रकार गाँव के तीन स्थानों में टिका दी गईं । बस, इसके अतिरिक्त न किसी का कोई स्वागत न प्रीतिभोज ।

बारातियों को पता चल गया कि वे तीनों एक ही लड़की के लिए आए हैं तब तो हलचल मच गई । गरमागरमी शुरू हुई पर गाँव वाले पहले ही तैयार बैठे थे । इधर कोई बाराती इस बात के लिए भी तैयार न थे कि बारात बिना विवाहे अपमानित होकर लौटे, इसलिए अब उल्टा पाँसा चल पड़ा ।

मुखिया ने तीनों बारातों को खबर भिजवा दी-"हमारी हैसियत दहेज देने की है नहीं, जो कम से कम दहेज लेने को तैयार हों, लड़की उसी के घर जायेगी ।"

गाँव मुस्करा भी रहा था और खतरे से निपटने के लिए तैयार भी खड़ा

था । आखिर उल्टी गंगा बही । नीलामी बोली नीचे को उतरने लगी । बात होते-होते बिना दहेज पर रुकी । हरसिंह पुरा के कछवायों ने अपनी शान रखने के लिए बिना दहेज विवाह करना स्वीकार कर लड़के को भी घर भेज दिया और इस तरह मंगलाचार प्रारंभ हो गया ।

शेष दो बारातें झगड़े के लिए उतारू हुईं पर जब उन्होंने देखा गाँव वाले पहले से ही संगठित और लट्ठबंद तैयार हैं तो उनके होश फाख्ता हो गए । दोनों बारातें बैरंग लौट गईं । मुखिया की लड़की हरसिंहपुरा बिदा होकर गई । वहाँ की ग्रामीण स्त्रियों ने उसे भाग्यशालिनी कहकर हँस-हँस स्वागत किया ।

दहेज के बदले पिटाई

यमुना नगर से कुडमाला गई बारात को बिना दुल्हन के ही वापस जाना पड़ा । कन्या पक्ष ने दहेज में जितनी नकदी देने का आश्वासन दिया था उतनी देने में बेचारा असमर्थ रहा । आखिर गाँव का एक साधारण किसान जो अपने परिवार के सदस्यों को रूखी-सूखी खिलाकर साल के आखिर में हजार-पंद्रह सौ रुपये बचा भी ले तो उससे क्या होता है ? बुआई के समय बीज और खाद आदि भी तो उसे उधार लेने पड़ते हैं जिसका भुगतान भी फसल कटते ही ब्याज सहित करना पड़ता है । फिर गाँव का महाजन, जो छोटे किसानों का आज भी बैंक बना हुआ है, उन्हें भी तो पुराने ब्याज का हिसाब करके संतुष्ट करना पड़ता है ।

बात असल में यों हुई कि उसने ढाई हजार रुपये नकद देने का वायदा कर दिया था, यदि उसकी फसल अनुमान के अनुसार भरपूर हुई होती तो वह देने में कमी न करता वरन सौ रुपये ज्यादा ही दे देता । पर भारतीय कृषि को क्या कहें ? वह तो पूर्ण रूप से प्रकृति पर निर्भर है । ओलों की हल्की बौछार आई और खेती में हजार रुपये का घाटा पड़ा । फिर यह संकट अकेले उस पर तो आया न था, गाँव के अन्य किसानों को भी इस विपत्ति की चपेट को झेलना पड़ा था । अतः वह रुपया गाँव में माँगता भी किससे ?

प्रयत्न करने पर भी आखिर वह हजार रुपये का इंतजाम नहीं ही कर पाया । बारात आ गई, दरवाजे पर दो हजार रुपये देने की बात थी, इसने समस्या उत्पन्न कर दी । जब उसने एक रुपया पाँच पैसे कपड़े के थान पर रख कर लड़के को देने चाहे तो उसने हाथ ही समेट लिए । पूरे गाँव के लोग

दरवाजे पर एकत्रित थे, बाराती भी सब बैठे हुए थे । लड़की के पिता ने सजल नेत्रों से वर तथा उसके पिता के पैर पकड़ लिए और कहा-"देने को जीवन भर है, यदि अभी किन्हीं मुसीबतों के कारण हजार रुपया नहीं दे पा रहा हूँ तो विश्वास रखो, आगे चलकर उसकी पूर्ति कर दूँगा । जिसने लड़की दी भला वह क्या छिपाकर रखेगा ।"

गाँव के अन्य वृद्ध, समझदार तथा पंचायत के सदस्यों आदि ने भी काफी समझाने की कोशिश की, पर मामला वहीं का वहीं उलझा रहा । लड़के वाले इस जिद पर डटे थे कि हजार रुपये निकाल कर रखो तभी द्वाराचार हो तथा उसके बाद ही पाणिग्रहण आदि रस्मों के लिए दूल्हे को भेजा जाय । हजार रुपया किसी के पास होता तो रखा जाता, इस प्रकार की पंचायत में सुबह के चार बज गए । बारातियों के लिए बना हुआ भोजन ठंडा हो गया, सारे बाराती भूखे बैठे रहे, बाराती खा लें तो घरातियों को खाने को मिले । आखिर दोनों ही पक्षों के लोगों को भूखा रहना पड़ा ।

ऐसे अवसरों पर तो हर प्रकार के व्यक्ति एकत्रित रहते हैं, कुछ बात बनाने वाले होते हैं तो कुछ बिगाड़ने वाले भी । लड़के के दोस्त ने धीरे से कह दिया-"लौट चलो यार, शादी और कहीं हो जाएगी ।" तब तक इधर से किसी ने नहले पर दहला मारते हुए अपनी बात जड़ दी-"जब शादी और कहीं हो सकती थी तो इसी गाँव में ही क्यों आए थे ?" फिर तो दोनों ओर से कहा-सुनी शुरू हो गई । गाँव वाले बारातियों तथा दूल्हे के पिता के व्यवहार से वैसे ही नाराज थे । मामला बढ़ा तो हाथा-पाई पर नंबर आ गया । कितने ही बाराती तो मौका पाकर भाग लिए । दूल्हा, उसके पिता तथा अन्य खास संबंधी जो रह गए थे उन्हें गाँव वालों ने खूब पीटा । "पैसा दे रहे हैं, लड़की दे रहे हैं और साथ ही दहेज दे रहे हैं, फिर क्या इज्जत भी लेना चाहते हो"-एक समझदार व्यक्ति ने बारातियों से कहा । पर उस भगदड़ में ऐसी बातों को सुनता ही कौन ?

बारातियों की अच्छी-खासी पिटाई हुई और घायल अवस्था में सरकारी अस्पताल में भर्ती कर दिया गया । न दूल्हे को दुल्हन मिली और न पिता को दहेज की रकम, यहाँ तक कि बारातियों को भूखे ही जाना पड़ा । दहेज माँगने वाले निर्दयियों को ऐसी ही सजा हर जगह मिला करे तो मजा आ जाय ।

दस हजार रुपये की एक नाक

हसनपुर के युवक अमीरसिंह उपरैन को दहेज के लोभी लड़के की नाक काट लेने के अपराध में ६ माह के सश्रम कारावास का दंड दिया गया ।

कानून की दृष्टि में अपराधी युवक की भर्त्सना की जा सकती है किन्तु इससे एक बात स्पष्ट हो गई है कि दहेज जैसी वैवाहिक कुरीति के प्रति जन विद्रोह बहुत अधिक व्यापक हो रहा है । संघर्ष की आग कुछ भी करा सकती है । दहेज की समस्या से उकताए अभिभावक अपराध करने लगें तो इसे अस्वाभाविक नहीं मानना चाहिए ।

हुआ यह कि अमीरसिंह को अपनी बहन का विवाह निश्चित करना था । युवक को समझदार समझकर लड़की के पिता ने विवाह की सारी जिम्मेदारी उसे ही सौंप दी थी । बेचारे अमीरसिंह ने नासमझी का कोई काम किया भी नहीं । दहेज के प्रति उसका असमर्थन होने पर भी उसने इस बुराई को केवल इसलिए स्वीकार किया कि उसकी बहन के किसी प्रकार हाथ पीले हो जायें ।

कुलगाँव के रामभरोसे सिंह के पुत्र श्री चंद्रजीत सिंह के साथ संबंध तय कर दिया । बहुत दौड़-धूप की तब कहीं जाकर विवाह पाँच हजार में तय हुआ, लड़की वालों ने विवाह की तैयारियाँ शुरू कर दीं । किन्तु एक दिन श्री रामभरोसे का पत्र मिला कि उन पर दूसरे लोग दबाव डाल रहे हैं वे ५ हजार में विवाह करने के लिए राजी नहीं । अमीरसिंह दूसरे ही दिन कुलगाँव पहुँचा । सारी चर्चा से पता चल गया कि रामभरोसे नीलामी चला रहे हैं । उन्होंने कई स्थानों से बातचीत प्रारंभ कर रखी है इस तरह वे दहेज की रकम को और बढ़ाना चाहते हैं । अमीरसिंह ने एक और पत्थर रखा । ५ हजार के स्थान पर ७ हजार तय हो गए, इस प्रकार विवाह उसका ही निश्चित रहा ।

जो हुआ सो हुआ, घर वालों ने संतोष की सांस ली और फिर बीच में कोई गड़बड़ न पड़े उसके लिए जल्दी ही विवाह की तिथि निर्धारित कर लड़के वालों के पास भेज दी । लेकिन जब उनका उत्तर आया तो अमीरसिंह सहित सारे घर का मिजाज बिगड़ गया । बात पूरी न करने और अनैतिक सौदेबाजी करने से, कोई क्यों न हो, बुरा लगेगा ही । अमीरसिंह दहेज का विरोधी था पर अब तक उसने यह नहीं सोचा था कि अपने समाज को इस

कुरीति से बचाने के लिए व्यापक संघर्ष की आवश्यकता है । उसने लड़की वालों की मुसीबत अच्छी तरह अनुभव कर ली थी । इसलिए उसके मन में संघर्ष की तीव्र प्रतिक्रिया उत्पन्न हो गई ।

दूसरे ही दिन वह पुनः कुलगाँव जा पहुँचा । किन्तु लड़के के पिता ने उससे ताव में आकर कह दिया–"१० हजार रुपये दोगे तभी विवाह होगा अन्यथा नहीं ।"

तब अमीरसिंह ने लड़के को एकांत में बुलाकर कहा–"देखो भाई ! मैं जितना दे सकता था पहले ही देना निश्चित कर लिया । अब यह कहाँ का न्याय है कि इस तरह सौदेबाजी की जाय ?" कहते हैं लड़के ने भी अपने बाप का ही पक्ष लेते हुए कहा–"विवाह करना है तो दस हजार दो, नहीं तो कोई और घर देखो ।"

बेटे को बाप से ज्यादा लालची देखकर अमीरसिंह का क्रोध नियंत्रण से बाहर हो गया । उसने निश्चय किया यदि यह लोग सौदेबाजी करके मेरी बहन का संबंध ठुकरा रहे हैं तो इसके लिए यही आवश्यक है कि इन्हें न तो एक पैसा कहीं दहेज मिले और न विवाह हो । इसी गुस्से में उसने जेब से चाकू निकाला और लड़के की नाक काट डाली । मुकदमा चला । ६ माह की जेल हुई, पर उससे युवक को न कोई दुःख हुआ, न पश्चात्ताप, उसने कहा–"मुझे तो उस दिन शांति मिलेगी जिस दिन दहेज के लोभियों की नाकें ऐसे ही काटी जाएँगी ।" यदि इस अनैतिक व्यापार को लोगों ने समझदारी से रोका नहीं तो अमीरसिंह की तरह सैकड़ों युवक विद्रोह कर बैठें तो कोई आश्चर्य नहीं ।

लड़की मध्यवृत्ति के लड़के को दें

दहेज की माँग, कम मिलने पर लड़की का, उसके पिता का तिरस्कार, गला घोंट देने, तेल छिड़क कर जला देने, दूसरा विवाह कर लेने आदि के कितने ही संकट नव वधुओं को सहने पड़ते हैं । शिक्षा और सभ्यता के साथ–साथ यह सोचा गया था कि इस प्रकार नारी का उत्पीड़न देखने–सुनने को न मिलेगा । मध्ययुग में अछूतों और स्त्रियों को पशु–संपत्ति की तरह गिना जाता था । उनके साथ ऐसे व्यवहार करने की छूट थी जिन्हें सभ्य समाज में बर्बर कहा जाता है । दास–दासी खरीदने–बेचने के जमाने से ही यह रिवाज रहा होगा कि किसी खाते–पीते घर में ही अपनी लड़की पहुँचायें । ऐसा न हो

कि जब भी ससुराल वालों की मौज आए तभी नयी फरमाइश प्रस्तुत कर दें और उसकी पूर्ति न होने पर घर में आई लड़की के साथ ऐसे जघन्य व्यवहार करें जिसे सुनकर उनके पिता-माता का कलेजा दहल उठे और जो माँगा गया है उसे अपनी चमड़ी बेचकर भी हाजिर करें ।

अनुमान था कि सामंतवादी बर्बर युग अब बीत गया और मानवीय अधिकारों की घोषणा कार्यान्वित होने लगेगी । किन्तु आए दिन देखने-सुनने में आने वाली नव वधुओं की हत्याओं और आत्महत्याओं के समाचारों की अभिवृद्धि को देखते हुए लगता है कि मूल बर्बरता जहाँ की तहाँ है । उसके नाम, रूप भर में अंतर पड़ा है । मध्यकाल में लुटेरे सयानी लड़कियों को उठाकर ले जाते थे, उनके बाप का घर खाली कर जाते थे । तब उसका नाम डकैती या चढ़ाई था । अब उसका नाम मुँहमाँगा दहेज हो गया है । यदि विवाह से पूर्व ही सौदा कर लिया जाय तो कम से कम पशुओं की खरीद-बिक्री वाले हाट-बाजार वाला तरीका अपनाया, यही कहा जायगा । लड़की को घर ले जाने के बाद तो वह अपनी बेटी हो गयी । अपनी बेटी के साथ अनाचार करने और वधू को सताने में कोई अंतर नहीं । वह अपना परिवार छोड़कर अकेली ही तो आई है । ससुराल वालों का पूरा समुदाय है । ऐसी दशा में उस पर कुछ भी इल्जाम लगाया जा सकता है, कुछ भी त्रास दिया जा सकता है । खरीदी हुई मुर्गी या बकरी के साथ कुछ भी व्यवहार किया जा सकता है । आज विवाह का मतलब किसी की लड़की को वधू रूप में खरीद लेना हो गया है । अंतर इतना भर है कि पशु खरीदने वाले कीमत चुकाते हैं, विवाह में लड़की देने वाले को उसकी कीमत देनी पड़ती है । इस समूचे प्रचलन को देखकर लगता है कि हम बर्बर युग की ओर फिर वापस लौटने लगे हैं । अंतर इतना ही है कि उन कुकृत्यों के ऊपर सभ्यता की चादर ओढ़ा दी जाती है । दहेज इच्छा के अनुरूप न मिलने पर त्रास देने के बढ़ते हुए समाचारों से किसी भी विचारशील को ऐसा ही अनुभव होगा ।

यूँ कहने को दहेज विरोधी एक्ट बन गया है पर उससे कोई लाभ नहीं । लेन-देन प्रकट में न होकर गुप्त रूप में होता है । इसी से गलतफहमी रह जाती है । जब खुलेआम सौदा होता था तब दोनों पक्षों का दिमाग साफ रहता था । अब इशारों से बिचौलियों के मार्फत बातें होती हैं । झगड़े की जड़ यहीं से आरंभ होती है । यदि पहले ही सौदा ठोक-पीट कर या लिखा-पढ़ी,

दस्तावेज, रजिस्ट्री आदि के रूप में हो जाया करे तो बेचारी निरीह कन्या को जो त्रास सहना पड़ता है, वह न सहना पड़े । कानून पास होने की अपेक्षा वह न बना होता तो अच्छा रहता । रिश्वतखोरी, व्यभिचार, जुआ आदि के विरुद्ध कानून बने हुए हैं पर उन अपराधों को दोनों पक्ष मिल-जुलकर परस्पर सहमति से करते हैं, ऐसी दशा में कानून क्या करे ?

वर पक्ष को कोसते बहुत दिन हो गए, पर इतने भर से काम चलता नहीं दीखता । एक पक्ष अपना दृष्टिकोण सुधार ले तो दूसरा पक्ष उतनी मनमानी नहीं कर सकता जितना कि इन दिनों कर रहा है । सुधरना लड़की के पिता को भी होगा । कहीं गलती उसकी भी रहती है । उसे सुधार लिया जाय तो समस्या का तीन-चौथाई समाधान हो सकता है । इस संबंध में कुछ सुझाव इस प्रकार हैं ।

(१) उपजातियों के छोटे दायरे में मालदार लड़के सीमित होते हैं । लोग उन्हीं पर घुटने के बल टूटकर पड़ते हैं । फलतः बेटे वालों के नखरे बढ़ते जाते हैं । काम न चले तो जातिमात्र को पर्याप्त समझें । ब्राह्मण, ठाकुर, वैश्य, कायस्थ आदि जातियों के अंतर्गत जो उपजातियों का जंजाल फैला है, उसे दिमाग से निकाल दें ।

(२) लड़का ऐसा तलाश करें जो काम-धंधे में लगा हो । घर वालों पर आश्रित न हो ।

(३) यूरोप आँधी-तूफान की तरह अपने देश में उड़ता चला जा रहा है । कोई विवाह कितने दिन टिकेगा, इसका भरोसा दिन-दिन कम होता जा रहा है । लड़की को इस योग्य बनाने के बाद विवाह करें कि वह आड़े वक्त में अपना गुजारा अपने पैरों पर खड़ी होकर कर सके ।

(४) दहेज विशुद्ध स्त्री-धन है । जो देना हो, उसका प्रदर्शन न करें । विवाह के तीन वर्ष बाद उसे फिक्सड डिपोजिट में लड़की के नाम डालें ।

(५) लड़की को सहनशील, मृदुभाषी और साहसी बनाएँ ताकि ससुराल में विपरीत परिस्थितियों में भी धैर्य रख सके । निर्वाह होता न दीखे तो पिता के घर यह सोचकर चली जाय कि अभी भी अविवाहित है ।

(६) ससुराल वाले न बुलाएँ तो लड़की को मायके लाकर पढ़ना आरंभ करा देना और कहीं काम में लगा देना पिता का कर्तव्य है । उसे ठेलकर न भेजें । अनेक जगह बुलाकर जहर आदि देकर पीछा छुड़ा लेते हैं

ताकि दूसरा विवाह करके नया दहेज प्राप्त कर सकें ।

(७) जिसके यहाँ पहली पत्नी के साथ दुर्व्यवहार हुआ हो उसके यहाँ, संपन्न घर देखकर, कोई भी दूसरा व्यक्ति अपनी लड़की न दे ।

(८) आजकल अंग्रेजी पढ़े-लिखे लड़के सिनेमा ऐक्ट्रेस जैसी लड़कियाँ तलाश करते हैं । दहेज के लोभ में विवाह तो कर लेते हैं पर पीछे शक्ल-सूरत पर नाक-भौं सिकोड़ते हैं । इसलिए लड़की लड़के को विवाह से पहले अवश्य दिखा दें । पसंद करे तो ही विवाह करें । दबाव न डालें ।

(९) विवाह के तीन वर्ष बाद तक यही समझते रहें कि अभी आधा विवाह हुआ है । लड़की लौटकर फिर पिता के घर आ सकती है ।

(१०) वर-वधू को ऐसी शिक्षा दी जाय और उपाय बताये जाँय जिससे कि विवाह के तीन वर्ष बाद ही संतानोत्पादन की बात सोचें ।

(११) लड़की को पढ़ने दें । बहुत छोटी उम्र में विवाह न करें । ससुराल संबंधी सभी बातों की आवश्यक जानकारी और सामने आने वाली समस्याओं के समाधान पितृगृह में ही समझा देने चाहिए ताकि नई परिस्थितियों में अकेली फँस जाने पर लड़की संतुलन न खो बैठे ।

स्मरण रहे समय का प्रवाह उल्टी दिशा में चल रहा है । यूरोप, अमेरिका के प्रचलन फैशन बनकर भारत पर भी सवार होते जा रहे हैं । विशेष रूप से नई पीढ़ी के अंग्रेजी पढ़े-लिखे लड़कों में । रूप की प्यास सबसे अधिक है । ऐसी दशा में यदि अपनी लड़की रूपवती और बातूनी न हो तो मध्यमवृत्ति का लड़का ढूँढ़ें और उसके नखरों का पहले से ही पता लगा लें । इन दिनों पढ़ाई पूरी करने से पहले ही लड़के सिगरेट, शराब के आदी हो जाते हैं । ऐसी किसी कुटेव वाले लड़के से संबंध न करें ।

अच्छा हो ऐसा सुयोग ढूँढ़ें जिसमें लड़के की तरह लड़की भी कमाने लगे । प्रगतिशील देशों में दोनों कमाते हैं । इससे घर का खर्च भी अच्छी तरह चलता रहता है और कोई किसी पर हावी भी नहीं होता ।

मालदार घरों के बहुत पढ़े-लिखे लड़कों की उपेक्षा करें । मध्यम वर्ग की आर्थिक दशा, सुसंस्कारी परिवार और सौम्य स्वभाव का लड़का अपनी पसंदगी की कसौटी हो । कुसंगग्रस्त, दुर्गुणी, आवारा एवं अपव्ययी लड़कों से बचें ।

इन कसौटियों का ध्यान रखने से लड़का ढूँढ़ने में अधिक कठिनाई नहीं पड़ेगी ।

लड़की-लड़का ढूँढ़ते समय यह ध्यान रखें

साथी के चुनाव में विवाह से पूर्व वर की सम्मति लेनी चाहिए, यह ठीक है । पर लड़का लड़की को देखे और लड़की लड़के को, दोनों की दोनों के प्रति सहमति होनी ही चाहिए । यह सिद्धांत मोटे तौर से ही अच्छा है । थोड़ी बारीकी में जाने पर इसमें कई खोट दिखाई पड़ते हैं । आँखों से केवल स्थूलतः एक ही वस्तु देखी जा सकती है–सौंदर्य । इससे भी महत्वपूर्ण है–स्वभाव । स्वभाव की परख वह कर सकते हैं जिन्हें बहुत दिन साथ रहने का अवसर मिला हो । कुछ मिनट शिष्टाचार की भेंट को दर्शन-झाँकी कह सकते हैं । यह एक दूसरे की रुचि के अनुरूप सर्वथा बनावटी भी बनाया जा सकता है । सौंदर्य में एक और कमी है कि वह इन दिनों की परख में मात्र किशोरावस्था का प्रतिनिधित्व करता है । किशोरावस्था अस्थिर है । समय बीतते ही वह चली जाती है । तेरह से लेकर उन्नीस तक उसकी अवधि है । इसके बाद व्यक्तित्व परिपक्व होने लगता है । फलतः जिस सौंदर्य की सिनेमा के मापदंड से परख की जाती है उसका पलायन होने लगता है । सिनेमा की तारिकाएँ अपने व्यवसाय के लिए जो आकर्षण बनाए रहती हैं, उसका आधे से अधिकांश भाग कृत्रिम साज-सज्जा से भरा होता है । यह कृत्रिमता अत्यधिक मँहगी भी होती है । वर वधू का चयन यदि दोनों मिलकर इसी आधार पर कर रहे होंगे तो उसमें धोखा ही धोखा उठाना पड़ेगा ।

रूप का, धन की तरह अपना अहंकार होता है और उसमें प्रदर्शन की महत्वाकांक्षा होती है । उसे दबाए रहना कठिन है । रूपवती अपनी छबि प्रदर्शन के उत्साह में कई बार शील की उस मर्यादा से बाहर भी जाती देखी गई हैं जो गृहस्थ जीवन की शालीनता की दृष्टि से मर्यादा का उल्लंघन है । लड़का यदि रूपवती को महत्व देता है तो निर्धारित वय समाप्त होते ही वह अन्य लड़कियों की ताक-झाँक कर सकता है । यही बात लड़की के संबंध में भी है । व्यक्तित्व की परिपक्वता जीवन की नाव खेती है । उसमें अनेक अच्छाइयाँ होते हुए भी यह खराबी भी है कि लड़की-लड़के एक दूसरे के किशोर सुलभ चंचल सौंदर्य का अपहरण कर लेते हैं । दोनों पक्ष यही सोचते रहते हैं कि चयन के दिनों वाला अपना सौंदर्य यथावत् बना हुआ है, कमी तो दूसरे के में आई है । यह मान्यता आगे चलकर व्यभिचारी दृष्टि उत्पन्न कर

सकती है और जो परख सर्वोत्तम कसौटी समझी गई थी वह हानिकारक सिद्ध हो सकती है ।

दूसरी कसौटी है, स्वभाव । यह भी एकांगी नहीं है । यह एक दूसरे के संतुलित व्यवहार पर निर्भर है । विकसित व्यक्तित्व में आत्म सम्मान की भावना विकसित हो जाती है । इसकी पूर्ति सामान्यतया पूरे परिवार में विशेषतया पति के माध्यम से होती है । इसमें चोट लगने पर संवेदनशील महिलाओं की मन:स्थिति गड़बड़ाने लगती है । यदि जल्दी ही समाधान न हो सका तो उसका परिणाम भीतरी घुटन के रूप में प्रारंभ होता है । स्त्रियाँ दूसरे तरह का वातावरण ढूँढ़ने लगती हैं । मैके चले जाने से, अलग रहने और आत्महत्या करने से लेकर स्वतंत्र नौकरी ढूँढ़ लेने जैसे उपाय उन्हें सरल मालूम पड़ते हैं । इनमें से जो भी सरल दीखता है, उसे वे अपना लेती हैं । अलग होने का कारण असम्मान की प्रतिक्रिया है । यह प्रतिक्रिया सामने वालों के व्यवहार पर जितनी निर्भर है उससे कहीं अधिक वधू की संवेदनशीलता पर निर्भर है । रूपवती शिक्षिताओं में यह माद्दा अपेक्षाकृत अधिक विकसित होता है । कहा नहीं जा सकता कि किस व्यवहार को असम्मान गिन लिया जायगा और उसका प्रतिशोध किस सीमा तक लिया जाने लगेगा । तलाकों की बढ़ती संख्या में यह कारण सबसे अधिक होता है । सहनशीलता, नम्रता आदि सद्गुण साथी में किस सीमा तक विकसित हुए हैं, इसका पता चलना दर्शन-झाँकी की रस्म पूरी करते समय सर्वथा असंभव है । यदि इस तथ्य में भूल हुई तो रूप देखने के निमित्त की गई दर्शन-झाँकी बहुत मँहगी पड़ती है । अलग-अलग नौकरी ढूँढ़ लेने के पक्ष में अनेक दलीलें दी जा सकती हैं और उसे उचित या लाभदायक भी ठहराया जा सकता है पर वह प्रकारांतर में तलाक का ही एक तरीका है । अध्यापन आदि एक दो महकमे ही ऐसे हैं जिनमें पति-पत्नी के साथ रहने की सुविधा रहती है । अन्यथा विभाग बदलते ही लगभग तलाक जैसी स्थिति बन जाती है और अपमान, असम्मान, प्रतिबंध, अनुशासन की कड़ाई जैसी छेड़छाड़ का मँहगा प्रतिशोध सामने आता है । गृहस्थ जीवन का उद्देश्य ही समाप्त हो जाता है ।

यदि विचारपूर्वक पति-पत्नी दोनों ने ही नौकरी करने का निश्चय किया हो तो नौकरी लायक उपयुक्त शिक्षा होने के लिए आयु निश्चित रूप से किशोरावस्था पार कर जायगी । तब रूप-लावण्य का खेद करना बेकार है ।

व्यक्तित्व परिपक्क होने के कारण उसका समय निकल चुका होगा । पति-पत्नी दोनों ही नौकरी करेंगे तो पति की तरह पत्नी की शिक्षा भी उपयुक्त होनी चाहिए । ऐसी दशा में यह भेदभाव भी छोड़ देना चाहिए कि पत्नी की आयु पति से छोटी हो । ऐसी दशा में कमाऊ वधू पति से आयु में बड़ी होना ही लाभदायक है । जिन्हें विकसित व्यक्तित्व वाली साथी चाहिए उन्हें नैपोलियन का उदाहरण ध्यान में रखना चाहिए जिसने अपने से आठ वर्ष बड़ी महिला से भावावेश में नहीं, वरन जान-बूझकर, सोच-समझकर विवाह किया था । जैसलमेर के देहाती इलाकों में अभी भी यह रिवाज है कि दस-बारह वर्ष के लड़के का विवाह अठारह-बीस वर्ष की लड़की से कर लेते हैं । कारण कि लड़की घर-गृहस्थी के अनेक काम वयस्कों की तरह करती रहती है । साथ ही पति की देखभाल सफलतापूर्वक करती रहती है । जहाँ उच्च शिक्षित वधू की आवश्यकता हो, वहाँ यह शर्त नहीं रखनी चाहिए कि लड़की लड़के से आयु में छोटी हो । यह दृष्टिकोण अपनाते ही किशोरी अर्थात रूपसी का दृष्टिकोण मस्तिष्क में से तुरंत निकाल देना चाहिए । नौकरी योग्य शिक्षा वाली पत्नी २५ वर्ष से कम आयु की कदाचित ही मिल सके । कक्षाएँ पास करने का जो नियम और समय लड़के के लिए है, वही लड़कियों के लिए भी है ।

लड़का लड़की को देखकर विवाह के लिए पसंद करेगा, इस माँग में कुछ बुराई नहीं है तो अच्छाई भी नहीं है । लड़का अपनी पसंदगी की शर्त अभिभावक को बता सकता है और फिर उनकी स्वीकृति को अपनी स्वीकृति कह सकता है । रास्ता चलते लड़के-लड़की आपस में एक नजर से देख लें तो हर्ज भी नहीं है । पर उस शर्त को पूरी रस्म के साथ संपन्न किया जाय और फिर इन्कार कर दिया जाय तो उसे लड़की का प्रत्यक्ष अपमान ही कहना चाहिए । यह अपमान यदि कई जगह से हो तो लड़की की भावुक मनोभूमि पर इसका बहुत बुरा असर होता है । इस बात को इस तरह समझना चाहिए कि लड़के की कोई बहन विवाह लायक हो और वह लड़के द्वारा देखे जाने और अस्वीकृत किए जाने के फेर में पड़ जाये तो उसकी प्रतिक्रिया बहुत बुरी होगी । कई स्वाभिमानी लड़कियाँ तो आवेश में तत्काल नौकरी ढूँढ़ लेती हैं । अपनी इच्छा विवाह की न होने की बात कहकर अपनी छोटी बहन का विवाह करने की बात कह देती हैं । कई बार ऐसे अवसर भी आते हैं कि कमाऊ बहू की आमदनी के लालच में कई कम कमाने और गृहस्थी का खर्च

अधिक होने वाले लड़के ऐसे विवाहों को लालचवश स्वीकृति दे देते हैं । किन्तु वे इस तथ्य को भूल जाते हैं कि लड़की इतनी भोली नहीं है कि वह मूल कारण को भूल गई होगी और जो कमाती होगी वह सास के बटुए में जमा करती रहेगी । कमाऊ लड़कियाँ आमतौर से अपनी आमदनी का धन अपनी जेब में रखती हैं । जरूरत के वक्त ही उनसे खुशामद-दरामद करके कुछ लिया जा सकता है । नौकरी भी करें और बाल-बच्चों का पालन-पोषण, गृहस्थी का काम-धाम भी वे ही संभाले ऐसा कोई लड़की नितांत भोलेपन या मजबूरी में ही करती होगी ।

गृहस्थी का उद्देश्य पुराने परिवार को सुविकसित करना और नए परिवार को सुयोग्य बनाना है । पति कमाने का कार्यक्षेत्र संभाले और पत्नी गृहलक्ष्मी की भूमिका निबाहे, तभी बात बनती है । इसकी पात्रता और योग्यता जिन लड़कियों में है, वे ही ससुराल में जाकर घर सँभालती और विवाह का उद्देश्य पूरा करती हैं । इस प्रयोजन की पूर्ति के लिए सिनेमा स्टाइल की रूपवती चंचल प्रकृति की लड़कियाँ प्रायः असफल ही रहती हैं । लड़के स्वयं देखकर लड़की को पसंद करें यह बात इसी कारण मानी जा सकती है कि कोई सिर-फिरा, बचकानी प्रकृति का लड़का अपने पल्ले बँधी लड़की को हैरान न करे अथवा अभिभावक को ताने न दे । इस बात को मानने की मजबूरी हो तो उसे रास्ता चलते ही एक आँख से दिखा देना चाहिए ताकि दस जगह यह शेखी न बघारता फिरे कि मैंने अमुक लड़की देखी, नापसंद कर दी, अमुक को रद्द कर चुका हूँ । उससे अधिक सुंदरी हो तो बात कीजिए अन्यथा पहले से ही रद्द मान लीजिए । ऐसे बहुत से रद्द करते फिरने वालों को लोग पहले से ही मनचला कहकर बात करना ही आरंभ नहीं करते ।

लड़की-लड़कों की पसंदगी के उपरांत अगला प्रश्न दहेज का चलता है । ऐसे मनचलों का सौदा उनके अभिभावकों से नहीं करना पड़ता वरन उनकी खुद की नाक पर मक्खी बैठती है । अपने आप को जो कुछ उनने समझ रखा है उसके अनुरूप न केवल देवी-अप्सरा जैसी लड़की चाहिए वरन कुबेर जैसा दहेज दाता ससुर भी चाहिए । इसके उपरांत विवाह की रस्म के समय घर दोस्तों के सामने चित्र-विचित्र नखरे दिखाने के लिए उचित-अनुचित फरमाइशों के सरंजाम लगा देते हैं । कमी रहने पर ऐसी नाराजगी दिखाते हैं, ताकि सब लोग उनकी खुशामद करें । इसके लिए कोई कारण

होना आवश्यक नहीं । आत्मश्लाघा किसी न किसी तरह पूरी होनी चाहिए । इसके लिए जब बहाना ही ढूँढ़ना है, तो कुछ न कुछ निकल ही आता है । विवाह के समय विलायत जाने का पढ़ाई खर्चा, मोटर गाड़ी, वीडियो आदि ऐसे ही लोग माँगते हैं और न दे सकने वालों से गिड़गिड़ाने का ड्रामा कराने का स्वांग बनाते हैं ।

यह विकृत 'अहम्' है, जो रूपवती कन्या ढूँढ़ने से आरंभ होता है । विवाह के समय नखरे करने से लेकर वहाँ तक चलता है जहाँ लड़की के साथ अतिवादी व्यवहार करते हैं । वो तो घर वालों के साथ शिष्टाचार तक नहीं बरतते और सुहागरात मनाने के लिए कश्मीर जाने के लिए हजार-दो हजार खर्च करते हैं या फिर लड़की के साथ धौंस जमाने, नखरे दिखाने और रौब गाँठने का सिलसिला आरंभ करते हैं । यह सब विकृत 'अहम्' के चिह्न हैं । ऐसे लड़कों के साथ या तो बहुत चालाक लड़कियाँ निभती हैं या फिर रो-रोकर दिन बिताने वाली ।

सिनेमाबाज ऐसे लड़के गली-कूचों में सर्वत्र भरे पड़े हैं । लड़की वाले ही अधिक परेशान रहते हैं, उनका हर छोटी उपजाति में ही लड़के ढूँढ़ने का आग्रह रहता है । इस सीमित दायरे में ही लड़की वालों की ढूँढ़-खोज अधिक रहती है और लड़के कम पाए जाते हैं । एक ही लड़के वाले के यहाँ अनेक लड़की वाले पहुँचते हैं । यह संख्या जितनी बढ़ती है, उतने ही उन लड़कों के दिमाग खराब होते जाते हैं ।

यह स्थिति का विश्लेषण है जिसका सामना अधिकांश लड़की वालों को करना पड़ता है । वस्तुस्थिति समझते हुए ही लड़के तलाश करने चाहिए । सद्गृहस्थ यदि लड़की को बनाना हो तो उन लड़कों पर नजर डालनी चाहिए, जो गृहस्थी किसे कहते हैं और उसे निभाया कैसे जाता है-यह जानते हों । लड़का ढूँढ़ते समय लड़की वाले को कुछ बातों का ध्यान विशेष रूप से रखना चाहिए । एक यह कि लड़के की बहनें हैं या नहीं और उन बहनों का विवाह करते समय जो समस्याएँ सामने आती हैं, उनका उन्हें सामना करना पड़ा है या नहीं । यदि करना पड़ा होगा तो उन्हें विदित होगा कि लड़की वालों को किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है ।

लड़की वाले दहेज देने से इन्कार करें

भरपूर दहेज, सजधज की बारात, धूमधाम की शादी इन दिनों आमतौर पर लड़के वालों की माँग रहती है । इन शर्तों को स्वीकार किए बिना मालदार घरों में लड़की को पहुँचाना कठिन पड़ता है । इसलिए आमतौर से बेटी वालों को अपना घर, खेत, बर्तन, कपड़े बेचकर भी यह माँग पूरी करनी पड़ती है । कर्ज लेना पड़ता है और चोरी, बेईमानी का रास्ता अपनाना पड़ता है ताकि बेटी को सुखी घर में पहुँचाया जा सके ।

यह सब करते हुए भी देखा जाता है कि बेटे वालों का मुँह सीधा नहीं होता, वे बाद में बहुत कुछ पाने की आशा करते हैं और न मिलने पर लड़की को त्रास देते हैं, ताकि वह माता-पिता से अपना दु:ख बताकर और भी जितना धन खींच सकती हो, खींचकर लाए । न मिलने पर कई बार वधुओं की हत्या तक कर दी जाती है, ताकि दूसरा विवाह होने पर उतना ही माल और हाथ लगे ।

इस प्रचलन के विरुद्ध सर्वत्र घृणा और निंदा का वातावरण बन रहा है । दहेज से उत्पन्न होने वाली बुराइयों को ध्यान में रखते हुए सरकार ने कानून भी बनाए हैं । अब उन्हें और भी कड़ा बनाया जा रहा है ताकि दहेज लेने वालों को कड़ी सजा दी जा सके । लोक मान्यता ने इस प्रचलन को अनैतिक ठहराया है । इसे चोरी, रिश्वत, लूट, राहजनी, डकैती, ठगी स्तर का अपराध घोषित किया गया है । समाज में ऐसे विवाह करने वालों को दुष्ट और भ्रष्टों में गिना जाने लगा है । पैसे की इस तंगी के जमाने में इस प्रकार अपव्यय की होली जलाना किसी प्रकार उचित नहीं है । गरीबों द्वारा अमीरों का स्वांग किया जाना, अपना घर और दूसरे का परिवार बर्बाद किया जाना किसी भी दृष्टि में औचित्य की सीमा में नहीं आता । इसलिए पत्र-पत्रिकाओं में इसके विरुद्ध लेख छपते रहते हैं । सभाओं में प्रस्ताव पास होते रहते हैं । जब तक लोकमत में कोई सामर्थ्य नहीं थी तब तक यह अनाचार चलता रहा । जब समझदारी का पक्ष जगा है तो दहेज विरोधी आंदोलन सरकारी और गैर सरकारी क्षेत्रों में बल पकड़ता जा रहा है ।

फिर भी देखते हैं कि यह प्रचलन बंद नहीं हो रहा है । धूमधाम की शादियाँ बराबर होती हैं और दहेज का लेन-देन भी प्रत्यक्ष या लुके-छिपे

बराबर होता है । विचारणीय है कि यह प्रथा कैसे बंद हो । इसके लिए जो पक्ष दोषी हो, उन सबको समझाया और प्रताड़ित किया जाना चाहिए ।

यहाँ बेटी वाले पक्ष पर विचार करना चाहिए कि वे दहेज को अनुचित समझते हुए भी देने को क्यों तैयार हो जाते हैं । धूमधाम में पैसा फूँके जाने के विरुद्ध प्रत्यक्ष असहमति व्यक्त क्यों नहीं करते । उससे स्पष्ट इन्कार क्यों नहीं कर देते ।

लड़की वाले सोचते हैं कि मालदार घर में लड़की पहुँच जानी चाहिए । शिक्षा, श्रम, उपार्जन की योग्यता को महत्व नहीं दिया जाता और सोचा जाता है कि मालदार घरों में जाकर लड़की ऐश करेगी । इसलिए मालदार घरों में सब टूट-टूट कर गिरे पड़ते हैं नीलाम की बोली बढ़ती जाती है, जो अधिक देता है उसके हक में फैसला छूटता है ।

दूसरी कमी बेटी वालों की यह है कि जाति, उपजाति के फेर में अपना दायरा बहुत संकीर्ण कर लेते हैं । उपजातियों के छोटे दायरे में अच्छे लड़के थोड़े ही मिल पाते हैं । अतएव ज्यादा दाम देकर उन्हें खरीदना पड़ता है । यदि जातियों का पूरा जंजाल अभी न छूटे तो उपजातियों के निरर्थक बंधन तो बिना हिचक के तोड़े जा सकते हैं । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, कायस्थ आदि के सीमित भेदों तक ही सीमित रहा जाये और उपजातियों के विभेद पर जोर न डाला जाय तो क्षेत्र बढ़ जायेगा और उसमें उपयोगी लड़के ऐसे मिल जायेंगे जिनमें सुधारवादी समझदारी विद्यमान हो ।

इन दोनों बातों का पहले से ही निश्चय कर लिया जाये कि अमीर घरों की अपेक्षा श्रमजीवी परिवार पसंद किए जाएँ, साथ ही उपजातियों के जंजाल को गले से उतार फेंका जाये तो बेटी वालों की आधी मुसीबत दूर हो सकती है ।

जितना पैसा धूमधाम के विवाहों में खर्च किया जाता है उतनी राशि लड़की के नाम लंबी अवधि के लिए बैंक में डाल दी जाये तो ब्याज सहित वह पैसा उतना हो सकता है जिसमें पति के रूप में एक समझदार नौकर रखा जा सके । अभी तो दहेज में जो दिया जाता है उसमें से लड़की के हाथ एक पैसा भी नहीं लगता, ससुराल वालों की धूमधाम में ही वह खर्च हो जाता है ।

दहेज न देने की चर्चा करते समय बेटी वालों को एक बंधन अपनी ओर से काटना चाहिए कि जेवर चढ़ाने या रानियों जैसे चमकदार कपड़े

चढ़ाने की बिल्कुल भी आवश्यकता नहीं है । फूल के जेवरों से और सादी साड़ी से काम चलाया जाये । यह स्पष्ट कर देने से दहेज की बोली घट जायेगी, क्योंकि बेटे वाले को भी मजबूरी यह रहती है कि उसे वधू के लिए जेवर, कीमती कपड़े और बेटी वाले के दरवाजे पर धूमधाम के द्वारा शोभा बढ़ाने के लिए ढेरों पैसा खर्च करना पड़ता है । इस खर्च की पूर्ति के लिए वह दहेज माँगता है । बेटे वाले का खर्च घटा दिया जाय तो वह भी अपने संबंधी को दिवालिया करने की जिद न करे ।

शादियाँ संसार भर में होती हैं, लड़की-लड़के शपथ कर्मकांड पूरा करते हैं और इष्ट मित्रों की चाय-पार्टी में सौ-पचास रुपया खर्च कर दिया जाता है । ५०० करोड़ मनुष्यों में केवल उत्तर भारत के सवर्ण हिंदू ही मुश्किल से १० करोड़ की संख्या में ऐसे होंगे जिनमें दहेज प्रथा चलती है ।

छोटी बिरादरियों में आमतौर से लड़के वाले को दहेज देना पड़ता है, ताकि लड़की वाले को उत्सव का कोई खर्च जेब से न देना पड़े । इस प्रथा के पीछे कम से कम कोई तर्क तो है कि जिनने लड़की को खिलाया-पिलाया, बड़ा किया, पढ़ाया-लिखाया, वे यदि किसी दूसरे के घर उसे आजीवन मुफ्त में मजूरी करने के लिए सुपुर्द करते हैं तो उनका हक बनता है कि वे अपनी लड़की के बदले पैसा वसूल करें । किन्तु जिन्हें सुयोग्य लड़की बिना मूल्य मिल रही है वे भी यदि पैसा माँगते हैं तो इसके पीछे न कोई तुक है न औचित्य । यदि दहेज देकर लड़के को खरीद लिया जाये और आजीवन नौकरी करायें जिनने पैसा दिया है तो बात कुछ तर्क की, औचित्य की भी बनती है । पर लड़की भी दी जाये और खुशामद में पैसा भी दिया जाये तो उसका औचित्य तभी है जबकि लड़की अपंग हो और ससुराल वाले सदा उसकी सेवा करें ।

यों दहेज माँगने वालों को कड़ी सजा देने वाला कानून बन रहा है पर उसकी कुछ उपयोगिता नहीं, क्योंकि दोनों पक्ष जिसमें अपराधी होते हैं उसमें मुकदमे कामयाब नहीं होते । रिश्वत देने और लेने वाले, व्यभिचार करने और कराने वाले दोनों ही पक्ष अपराधी मित्र होते हैं । इसलिए कोई किसी के विरुद्ध गवाही या सबूत क्यों देगा । यह कार्य कानून से नहीं सामाजिक वातावरण बनाने से ही हो सकता है । इस संबंध में बेटी वालों को भी अपनी गलती समझनी चाहिए और उसका तत्काल सुधार करना चाहिए ।

उत्तरप्रदेश की ताजी जनगणना के अंक हमारे सामने हैं । वे बताते हैं कि १००० पुरुषों के पीछे महिलाएँ मात्र ९२९ हैं । जिन समाजों में लड़कियाँ कम होती हैं और लड़के अधिक, उनमें लड़के वालों को लड़की वालों की खुशामद करनी पड़ती है और पैसा भी देना पड़ता है । कुवैत में लड़कियाँ कम हैं । वे अन्य देशों से किसी भी प्रकार लड़की प्राप्त करने के लिए दौड़-धूप करते हैं । पंजाब में भी थोड़े दिन पहले लड़कियाँ कम थीं तब विवाह के लिए लड़के वालों को ही दौड़-धूप करनी पड़ती थी । मुसलमानों में अभी रिवाज है कि लड़के वाले ही लड़कियाँ तलाश करने जाते हैं । उत्तरप्रदेश के देहरादून जिले में जौनसार बाबर एक इलाका है । वहाँ लड़कियाँ कम हैं । फलतः वे लोग बड़े लड़के का विवाह कर लेते हैं और एक ही वधू सब भाइयों की पत्नी मानी जाती है ।

भारतवर्ष में लड़कियाँ लड़कों की तुलना में घटती जाती हैं । इसके कई कारण हैं । लड़कियों का महत्व कम समझा जाता है । उन्हें पराए घर का कूड़ा माना जाता है । फलतः उनके पालन-पोषण पर, चिकित्सा पर उतना ध्यान नहीं दिया जाता । फलतः वे अधिक मरती हैं । प्रसव पीड़ा से लाखों स्त्रियाँ अपनी जान गँवा बैठती हैं । कुछ दिन पूर्व राजस्थान के राजपूतों में लड़की जन्मते ही मार देने और विवाह के झंझट से बचने का रिवाज था । उसे अंग्रेजी शासन में 'दुख्तर कुशी कानून' बनाकर रोका गया था । अभी भी वह रिवाज चोरी-छिपे जहाँ-तहाँ मौजूद है । इन सब कारणों से लड़कियों की संख्या लगातार घटती जा रही है । परिस्थितियाँ बताती हैं कि विवाह के संबंध में लड़कों का पक्ष कमजोर है । इसलिए उन्हें ही शादी के लिए भाग-दौड़ करनी चाहिए । हाथ-पैर पीटने चाहिए । इन परिस्थितियों में भी लड़की वाले परेशान हों, खुशामद करें, पैसा दें तो यह उनकी ही भूल है ।

बेटी वालों को, बेटियों को थोड़ी कड़ाई और उपेक्षा दिखानी चाहिए । ऐसा करने में थोड़े दिन परेशानी उठानी पड़ सकती है । कुछ लड़कियों को देर तक या आजीवन कुमारी रहना पड़ सकता है पर दहेज देकर पिता के परिवार को दिवालिया बनाकर विवाह करने की अपेक्षा यही अच्छा है कि वे प्रतिज्ञा कर लें कि जहाँ दहेज माँगा जायेगा वहाँ वे विवाह न करेंगी । इस प्रतिज्ञा का पालन भी करें । इन परिस्थितियों में वातावरण हर हालत में बदलेगा । न्याय, औचित्य, तर्क, तथ्य, कानून, लोकमत सभी तो उनके पक्ष

में हैं । थोड़े दिन अकड़ने भर की जरूरत है । फिर तो लड़के बेचकर रकम भुनाने वालों के होश दुरस्त हो जायेंगे और वे परिस्थितियों के अनुरूप अपनी अकड़ छोड़ने के लिए मजबूर होंगे ।

संसार में अनेक कुरीतियाँ प्रचलित थीं । अन्यायी लोग उनसे भरपूर फायदा उठाते थे । दास-दासी प्रथा, बेगार, जमीन पर कोई हक न होना, बंधुआ मजदूरी आदि-आदि कुप्रचलन थे । कुप्रचलनों में पीड़ितपक्ष को ही तनकर खड़ा होना पड़ता है । इसी आधार पर पराधीन देशों ने भी स्वाधीनता प्राप्त की है । अन्यायी व्यक्ति स्वतः अनीति छोड़ने के लिए कहीं भी, कभी भी तैयार नहीं हुआ है । अब बेटी वालों का पीड़ित पक्ष है । इसलिए विश्व इतिहास से कुछ शिक्षा लेते हुए भी न्यायोचित संघर्ष के लिए खड़ा होना होगा । इसमें कुछ त्याग-बलिदान करना पड़े तो भी इसके लिए, वातावरण को बदलने के लिए स्वयं मुसीबत उठाने के लिए तैयार होना चाहिए ।

यह कार्य गायत्री परिवार के परिजनों को अग्रिम पंक्ति में खड़ा होकर आरंभ करना चाहिए । अभिभावकों को प्रतिज्ञा करनी चाहिए कि वे न अपनी लड़की के विवाह में दहेज देंगे और न लड़कों के में लेंगे । इसी प्रकार विवाह योग्य लड़की, लड़कों को भी प्रतिज्ञा करनी चाहिए कि वे इस घिनौनी और कमीनी प्रथा को किसी भी हालत में स्वीकार न करेंगे, चाहे उन्हें आजीवन कुँवारा ही क्यों न रहना पड़े ।

गायत्री यज्ञों में सामूहिक विवाह होने की प्रथा चलाई गई है । शांतिकुंज व मथुरा में भी हर साल सैकड़ों बिना दहेज के विवाह होते हैं । जिन्हें सुविधा हो वे इस व्यवस्था से लाभ उठा सकते हैं ।

दहेज और धूमधाम की शादियों के विरुद्ध मोर्चा खड़ा हो

दुष्टताएँ इतनी भोली-भाली नहीं कि प्रार्थना करने भर से ही अपना बोरिया-बिस्तर समेट लें । वे लालच और अहंकार पर निर्भर होती हैं । अनीति का चस्का ऐसा बुरा है कि समुचित दबाव पड़े बिना वह छूटता नहीं । शराबियों-जुआरियों की आदतें जेल में बंद होने पर विवश होकर छूट जाती हैं । दंड और प्रताड़ना तो बड़ी बात है । साधारण विरोध, व्यंग्य-उपहास जैसे प्रतिरोधों से भी काम चल जाता है । उसके उपरांत ऐसा भी हो सकता है कि

धीमा अथवा कड़ा संघर्ष करना पड़े । न्याय और औचित्य के पक्ष में यह अस्त्र भी काम में लाये जाने चाहिए । समझाने भर से वहाँ काम नहीं चलता । जहाँ दुष्टता को लालच और अहंकार की पूर्ति का लाभ दीखता हो, वहाँ विद्रोह और संघर्ष की सीमा तक जाकर ही अवांछनीयताओं को निरस्त किया जा सकता है ।

अपने समाज में यों अनेक कुरीतियाँ प्रचलित हैं, पर उन सबमें अधिक भयावह 'खर्चीली शादियों' का प्रचलन है । इसमें दहेज का लेन-देन तो प्रधान है ही, इसके अतिरिक्त दिखावे में दी जाने वाली वस्तुएँ, बारात की सज-धज, कीमती ज्योनार आदि के खर्च भी ऐसे हैं, जो लगभग दहेज के बराबर ही पैसा बर्बाद कराते हैं ।

बड़े आदमियों की शादी में लाखों की, मध्यवर्ग की शादी पचास-चालीस हजार की और गरीबों की भी दस-पंद्रह हजार की बैठती है । लड़कियों को शिक्षित बना देने पर मध्यवर्ती परिवार तो ढूँढ़ना ही पड़ता है और वह विवाह करने का अर्थ न्यूनतम चालीस-पचास हजार खर्च करना होता है । यह राशि कहाँ से जुटाई जाय-यह प्रश्न टेढ़ी खीर के समान है । जिसके यहाँ दो-तीन लड़कियाँ भी हों, उसे लाख-डेढ़ लाख की आवश्यकता पड़ेगी । इस मँहगाई के जमाने में ईमानदारी से कमाने वाला उतना ही अर्जित कर सकता है, जिसमें गुजारा हो सके और किसी प्रकार बच्चों को पढ़ाया भर जा सके । बचत की कोई गुंजायश नहीं रहती । लड़कियों की शादी के लिए जो अतिरिक्त पैसा चाहिए, इसका जुगाड़ बिठाने में बेईमानी, ठगी, रिश्वत जैसे तरीके ढूँढ़ने पड़ते हैं । जिनकी आत्मा यह सब दंद-फंद करने के लिए सहमत नहीं होती, उन्हें मँहगी ब्याज पर जहाँ-तहाँ से ऐसा कर्ज लेना पड़ता है, जिसके चुका सकने की कोई संभावना नहीं रहती । यह भी न बन पड़े, तो घर के थाली-बर्तन बेचकर पहली लड़की भर के लिए किसी तरह खाईं पट जाती है । बाकी दो लड़कियों के लिए तो वह संभावनाएँ भी समाप्त हो जाती हैं । लड़कियाँ बढ़ने लगती हैं और माँ-बाप चिंता से सूखकर काँटा होने लगते हैं । कितनी ही लड़कियाँ इस कुचक्र में कुँवारी रह जाती हैं । कई नौकरी ढूँढ़ लेती हैं । कई माता-पिता को चिंता मुक्त करने के लिए आत्मघात जैसे तरीके अपनाती हैं ।

देखा जाय कि धूमधाम वाली, दहेज-ठहराव वाली शादियाँ क्या

आवश्यक हैं ? इस संदर्भ में समस्त संसार पर दृष्टिपात करना होगा । कहीं भी ऐसा प्रचलन न मिलेगा, जहाँ इस प्रकार का आडंबर रचा जाता हो और लड़की देने वाले के प्रति कृतज्ञ होने की अपेक्षा उससे उल्टे दहेज वसूल किया जाता हो । अपने देश में भी ईसाई, मुसलमान, जैन, सिख आदि में भी ऐसा रिवाज नहीं है । कहीं-कहीं इन वर्गों में पड़ौसियों की छूत लगी है अथवा नीलाम की बोली बढ़ाकर काले पैसे वाले इस तरह का ढर्रा नए सिरे से चलाते हैं ।

सोचा यह जाना चाहिए कि गरीब वर्ग पर इस प्रथा के कारण कोल्हू में पिलने जैसा कितना संकट टूटता है ? उनकी लड़कियाँ माता-पिता की आँखों में से आँसू बरसते देखकर कितना सकुचाती हैं और अपने को अभागी मानती हैं । बाप को इस कारण बेईमानी के स्रोत खोजने पड़ें, तो यह और भी बुरी बात है ।

लड़के वाले भी कुछ बड़ा नफा नहीं कमा लेते । लड़कियाँ अपने घर-परिवार में भी होती हैं । जितना लिया है, उसी हिसाब से उन्हें भी देना पड़ता है । इसके अतिरिक्त धूमधाम और प्रदर्शन का पैसा तो सर्वथा चला जाता है । बैंड-बाजा, दूल्हा की सजावट और सवारी, बरातियों को बुलाने और खिलाने का खर्चा ऐसा है, जिसे गरीबों का अमीरों जैसा भौंडा स्वांग ही कहा जा सकता है । अन्य सभी फर्नीचर आदि ऐसे होते हैं, जो बेकार जगह घेरते हैं । उन्हें रखने को छोटे घरों में जगह नहीं होती । बेचने में नाक कटती है । फिर वह जहाँ-तहाँ पड़ा हुआ टूट-फूट जाता है । लड़के वाला जितना दहेज माँगता है, उसी अनुपात से उसे वधू के लिए कीमती जेवर और रानियों जैसे कपड़े बनवाने पड़ते हैं । बारात की दावत और सजावट में ढेरों पैसा खर्च करना पड़ता है । ऐसी दशा में जो दहेज में वसूल किया गया था, वह ऐसे ही बेतुके ढंग से बर्बाद हो जाता है, बचाकर रखने जैसी कोई पूँजी हाथ नहीं लगती । लड़की को जो जेवर-कपड़ा मिला, वह समधी के काम नहीं आता । बेटी वाला पिस जाता है और बेटे वाला उस उपलब्धि से कुछ कमाई कर सके, बचत करके घर में जमा कर सके, ऐसा कुछ भी नहीं हो पाता । मात्र बदनामी का ठीकरा ही उसके सिर पर फूटता है और अपनी घर की लड़कियों के लिए उसी अनुपात से खर्च करने का बंधन बंधता है । न कर पाने पर फिर व्यंग्य-उपहास और लानत-मलामत का वातावरण बनता है ।

ऐसी दशा में दूसरे बेटी वाले की जो दुर्दशा की गई थी, वही अपनी बेटियों की बारी आने पर अपनी भी होती है ।

हर विवाह में जो दोनों ओर का खर्च होता है, औसतन तीस-चालीस हजार तो आँका ही जा सकता है । बड़े गृहस्थ में हर दूसरे-तीसरे साल एक शादी करनी पड़ती है । इस प्रकार इस मद में लाख से ऊपर ही पैसा बर्बाद हो जाता है । यह धन बर्बाद न हुआ होता, किसी उपयुक्त व्यवसाय में लगाया गया होता, बैंक में ही जमा कर दिया गया होता, तो वह पैसा बढ़ता और उसका लाभ दोनों पक्षों को मिलता । अब तो दोनों की ही बर्बादी और बदनामी होती है । दोनों ही गरीबी के चंगुल में फँसते हैं ।

समय की माँग है कि इस विचारशीलता के युग में यह तथ्य हर किसी को हृदयंगम कराया जाय कि खर्चीली शादियाँ हमें दरिद्र और बेईमान ही नहीं बनातीं, बदनाम भी कराती हैं । यह प्रथा मध्यकालीन सामंतवादी युग के जमींदार, साहूकार, लुटेरों की है, जो अनाप-शनाप कमाते और आँखें बंद करके खर्चते थे । अब परिस्थितियाँ बदल गई हैं । समझदारी अपनाने का तकाजा सिर पर है । सर्वत्र गरीबी और कठिनाई का दौर है । इन दिनों एक-एक पैसा संभालने और उसे फूँक-फूँककर पैर रखते हुए मुट्ठी बाँधकर खर्च करने का जमाना है । इसलिए वह रास्ता निकालना चाहिए, जिससे खर्चीली शादियों की, दहेज-ठहराव की लानत से बचा जा सके ।

मनुष्य की आदत अनुकरणप्रिय है । अंधी भेड़ों की तरह एक के पीछे दूसरे को चलते देखा जा सकता है । खर्चीली शादियों के संबंध में भी यही हुआ और हो रहा है । इस कुचक्र को कहीं से तो तोड़ना ही पड़ेगा । आदर्शवादी उदाहरण किन्हीं को तो उपस्थित करने ही होंगे । कुरीतियों और मूढ़ताओं से किन्हीं को तो संघर्ष करना ही होगा । यह कार्य प्रज्ञा-परिजनों को अपने कंधे पर उठाना चाहिए और संघर्ष छेड़ने में अपने को भी चोट लगने का जोखिम उठाना पड़ता है, उसके लिए साहस जुटाना चाहिए ।

प्रगतिशीलता अपनाने और सुधार-परिवर्तन का श्रीगणेश करने का संकल्प लिया गया है । इसलिए उन्हीं के जिम्मे यह काम भी आता है कि कुरीतियों में सबसे निंदनीय और हानिकारक खर्चीले विवाहों की कुप्रथा के उन्मूलन के लिए अपने घरों से शुभारंभ करें और किसी दूसरे के आगे बढ़ने, साथ देने की प्रतीक्षा किए बिना, स्वयं ही इस दिशा में अपने कदम बढ़ाएँ ।

प्रज्ञा परिवार के वयस्क नर-नारियों को प्रतिज्ञा करनी चाहिए कि अपने लड़के-लड़कियों की शादियाँ सर्वथा बिना खर्च के करेंगे । अपना गायत्री परिवार अब इतना बड़ा हो गया है कि उसमें इसी विचार के दोनों पक्ष मिल सकते हैं । यहाँ इतना और सुधार करने की आवश्यकता है कि उपजातियों का बंधन तो निश्चित रूप से ढीला किया जाना चाहिए । ब्राह्मणों की ब्राह्मण मात्र में, क्षत्रियों की क्षत्रिय मात्र में, कायस्थों की कायस्थ मात्र में, इसी प्रकार अन्य जातियों में भी उपजातियों का बंधन न रहे, तो उपयुक्त लड़के-लड़की तलाश करने में आधी कठिनाई तो सहज ही दूर हो सकती है । छोटी उपजातियों में थोड़े से सुयोग्य लड़के होते हैं और उनकी बोली मँहगी बढ़ती जाती है । यदि ढूँढ़ने का क्षेत्र थोड़ा बड़ा हो जाये, तो अपने अनुरूप संबंध तलाश करने में बहुत सुविधा हो सकती है और समस्या का एक बड़ा पक्ष हल हो सकता है ।

आदर्श विवाहों का रूप यह है कि निजी परिवार के न्यूनतम दस के लगभग व्यक्ति ही बारात में जाएँ । बाहर से किसी संबंधी, यार-दोस्त को उसमें न ले जाया जाये । वधू के आने पर उसके हाथ का बनाया-परोसा भोजन खाने के लिए अपने मित्र-संबंधियों को अपने घर पर दावत के लिए बुलाया जा सकता है ।

विवाह के अवसर पर दोनों ओर से कोई दिखावे की चीज न तो ली जाये, न दी जाये । बेटे की ओर से जेवर या रानियों जैसे कपड़े चढ़ाने की कतई जरूरत नहीं है । इसी प्रकार बेटी वाले की ओर से चित्र-विचित्र फर्नीचर, कपड़े या नकदी देने की कोई आवश्यकता न समझी जाये । अधिक से अधिक इतना ही हो सकता है कि दोनों की ओर से लड़की-लड़के के सामान्य कीमत के कपड़ों का आदान-प्रदान कर दिया जाये । जेवर के नाम पर दोनों ओर से एक-एक अँगूठी भर दी जाय । बारात एक दिन रुके और दूसरे या तीसरे दिन बिदा हो जाये ।

अपने यहाँ इसके विरोध-उपहास का झंझट हो तो दोनों पक्ष शांतिकुंज, हरिद्वार या गायत्री तपोभूमि, मथुरा चले आवें और यहाँ के दिव्य वातावरण में शास्त्रीय विधि से शादी करा के ले जाएँ । इसमें किसी साधन-सामग्री के समेटने-बटोरने की आवश्यकता नहीं पड़ती । विवाह में जिन वस्तुओं की आवश्यकता पड़ती है, उन सबका यहाँ प्रबंध है ।

बिना खर्च, प्रदर्शन, दहेज की शादियाँ करने की प्रतिज्ञा का हमें

दृढ़तापूर्वक निर्वाह करना चाहिए । प्रतिज्ञा ऐसी ढीली-पोली न होनी चाहिए कि मित्र-कुटुंबियों-संबंधियों के विरोध करने पर उसे तोड़ दिया जाय । भले ही उपयुक्त जोड़ा मिलने में देर लगे, इसके लिए धैर्य रखा जाये और विवाह संबंध उन्हीं परिवारों के साथ जोड़ा जाये, जिनमें आदर्शवाद की लहर पहुँच चुकी हो ।

अपने संपर्क क्षेत्र में भी यह विचारधारा पहुँचानी चाहिए और यह भी निश्चित करना चाहिए कि उन्हीं शादियों में सम्मिलित हुआ जायेगा, जिनमें उपरोक्त आदर्श अपनाया गया है । जहाँ पुराने ढर्रे की ही धूमधाम, लेन-देन हो रही हो, उनमें सम्मिलित नहीं हुआ जाये, भले ही वह अपने कुटुंबी या संबंधी के यहाँ ही क्यों न हो रही हो ।

स्कूलों-कालेजों में लड़की-लड़कों तक यह प्रचार किया जाना चाहिए । उन्हें इस संदर्भ का साहित्य पढ़ाना चाहिए और इस कारण होने वाले अनर्थों का विवरण अखबारों में से कटिंग काटकर सुनाना चाहिए ।

जो लड़के-लड़कियाँ सहमत हों, उनसे प्रतिज्ञा-पत्र भराने चाहिए कि विवाह आदर्श परंपरा के अनुरूप ही करेंगे । परिवार के लोग यदि इससे असहमत होंगे, तो बिना विवाह के रहेंगे, पर इस प्रतिज्ञा को तोड़ेंगे नहीं । अपने इस निश्चय की जानकारी उनके अभिभावकों को भी दे देनी चाहिए, ताकि वे कहीं बात चलाकर पीछे बात को लौटाने में अपनी तौहीन न समझें । स्कूल-कालेजों से अतिरिक्त भी जहाँ कहीं अविवाहित मिलें, वहाँ उनसे भी यही प्रतिज्ञाएँ करानी चाहिए । साथ ही उपयुक्त जोड़े मिलाने में, उपयुक्त समय पर उनकी सहायता भी करनी चाहिए । हर क्षेत्र में ऐसे प्रतिज्ञा करने वाले अभिभावकों एवं युवक-युवतियों की लिस्ट भी हर शाखा-संगठन को रखनी चाहिए ।

एक अच्छा तरीका सामूहिक विवाहों का भी है । गायत्री यज्ञ, युग निर्माण सम्मेलन के साथ सामूहिक विवाहों की योजना भी बनाई जाय । अभिभावकों के साहस को सराहा जाय और अन्य लोगों को भी यही परिपाटी अपनाने के लिए प्रोत्साहित किया जाये । संभव हो तो वर-वधुओं के जोड़े सवारियों पर बिठाकर उपस्थित जनता समेत नगर में जुलूस निकाला जाय । किन्तु स्मरण रहे कि इन सामूहिक विवाह आयोजनों में बाल-विवाहों को प्रोत्साहन न दिया जाये । कुछ समय पूर्व भारत सरकार यह एक्ट पास कर

चुकी है कि अठारह से कम की लड़की और इक्कीस वर्ष से कम के लड़के का विवाह करना दंडनीय है । ऐसा करने पर दोनों पक्ष के अभिभावक और विवाह कृत्य कराने वाले पंडित जेल जा सकते हैं । अपने मंच से बाल-विवाहों का समर्थन नहीं होना चाहिए । एक अच्छाई-दूसरी बुराई मिला देने पर यह प्रयत्न गुड़-गोबर मिला देने की तरह सर्वथा निरर्थक ही हो जाता है । दहेज के कारण होने वाली हानियों से बाल-विवाह की हानि किसी प्रकार कम नहीं है । ऐसे आयोजनों से प्रोत्साहित होने वाले अगले संबंध के लिए परिचित लोगों के बीच जुड़ जाते हैं ।

बिहार में मैथिल ब्राह्मणों का एक बड़ा मेला ऐसा भी होता है, जिसमें अभिभावक अपने लड़के-लड़कियों को लेकर पहुँचते हैं और अपने उपयुक्त संबंधों की ढूँढ़-खोज का काम उस अवसर पर सरल बना लेते हैं । गायत्री परिवार के क्षेत्रीय बड़े आयोजनों में इस प्रकार का प्रचलन भी करना चाहिए । ढूँढ़-खोज में सरलता हो जाना भी एक बड़ी बात है ।

आवश्यकता इस बात की है कि खर्चीली शादियों की हानियों से जन-जन को अवगत कराया जाय और कहा जाय कि इस आधार पर होने वाले संबंधों में कन्या पक्ष अपने ऊपर तेल पेरने जैसे दबाव भरे अत्याचार को कभी भूलता नहीं । संबंधियों के बीच जो प्रेम भाव बनना चाहिए, वह आजीवन बनता ही नहीं । लड़कियाँ भी समझदार होती हैं, उनके मन में भी यह घाव बना रहता है कि ससुराल पक्ष ने उसके अभिभावकों को किस प्रकार त्रास दिया और निचोड़ा है । इस घाव के कारण वह ससुराल वालों की मन से सेवा भी नहीं कर पाती । विवाह की धूमधाम तो दो-चार दिन में समाप्त हो जाती है, पर उसके कारण हुई घर की बर्बादी की आजीवन याद बनी रहती है और वह खाई लंबे समय तक पटती नहीं । विवाह का उद्देश्य दो परिवारों में घनिष्ठ-आत्मीयता का संबंध जोड़ना है, पति-पत्नी के बीच श्रद्धा और सहानुभूति उत्पन्न करना है । पर जहाँ दहेज के नाम पर नीलामी होती है, वहाँ बाहर से शिष्टाचार बरता जाने पर भी, भीतर ही भीतर घृणा और तिरस्कार बना रहता है । इसके रहते न वर-वधू में आत्मीयता पनपती है और न दो कुटुंब परस्पर सुख-दुःख के साथी होने की आशा करते हैं । दहेज के नाम पर लड़का बेचा जाना हो तो फिर उसे बैल की तरह ससुराल ही जाकर रहना चाहिए और उन्हीं लोगों का काम-धंधा करना चाहिए । न्याय की दृष्टि से सोचा जाय तो

लड़की वाले दहेज माँगें तो उसके पीछे कोई तर्क तथा औचित्य भी है । पर लड़के वाले दहेज माँगें, इसका तो कोई न्यायोचित कारण भी समझ में नहीं आता ।

इस संदर्भ में महाभारत का सा एक संघर्ष खड़ा करना पड़ेगा, जिसमें कुटुंबियों और संबंधियों का ख्याल किए बिना भगवान कृष्ण ने पांडव-कौरवों को नीति-अनीति के प्रश्न पर आपस में लड़ा दिया था । मीरा के एक पत्र का उत्तर देते हुए तुलसीदास जी ने लिखा था-

पिता तज्यौ प्रह्लाद, विभीषण बंधु, भरत महतारी ।
गुरु बलि तज्यौ, कंत ब्रजबनितन, भए मुद मंगलकारी ॥

इसका अर्थ है कि नीति-अनीति के प्रश्न पर कुटुंबी-संबंधियों के अभिमत की उपेक्षा की जा सकती है और उनके आग्रह-परामर्श की अवमानना की जा सकती है । प्रज्ञा परिवार में छोटे-बड़े सभी को खर्चीली शादियों के संबंध में ऐसा ही रुख अपनाना चाहिए, अनीति के आगे सिर नहीं झुकाना चाहिए । संगठन में यह माहौल बनेगा तभी सारी जगती से इस समस्या से जूझा जा सकेगा । अतः शुरूआत अपने से ही की जाये ।

शादियों में अनावश्यक अपव्यय न हो

बुराइयाँ ऐसे विषवृक्ष की तरह हैं जो अपने आप नहीं मुर्झातीं । अनाचार के पेड़ पर छाई हुई अमरबेल की तरह जहाँ रहती हैं वहीं से अपने लिए पोषण प्राप्त कर लेती हैं । उन्मूलन करना हो तो उसे जड़-मूल से उखाड़ना पड़ता है ।

कुछ समय पूर्व चीन अफीम के नशे में ग्रस्त था और जन समुदाय अर्द्धमृतकों की, काहिल-अपाहिजों की तरह जी रहा था पर जब परिस्थिति बदली तो अभ्यस्तों की मनोदशा का ख्याल किए बिना उस कुरीति को हटा ही दिया गया । सुधारकों की कड़ाई प्रचलन के आगे झुकी नहीं । भारत में भी अब से कुछ पहले जमींदारी प्रथा का बोलवाला था । किसान मजूर था और जमींदार मालिक । मुनाफा मालिक का था और मजूर को पेट भरने जितना मिलता था । बँधुआ मजूरों की दशा तो और भी अधिक गई-गुजरी थी ।

समझा गया कि इस स्थिति के रहते अधिकांश जन-समुदाय को दुर्दशाग्रस्त ही रहना पड़ेगा । विवेक ने झकझोरा तो समाज के मूर्धन्य लोग इन

कुप्रथाओं के विरुद्ध परिवर्तन के लिए कटिबद्ध हो गए । परिणाम अच्छा ही हुआ । किसान अपने खेत के मालिक बने और स्थिति में उत्साहवर्द्धक परिवर्तन हुआ ।

ऐसी ही कुप्रथाओं में एक है—खर्चीली शादियों का प्रचलन । सवर्णों में लड़के बिकते हैं और असवर्णों में लड़कियाँ । घर बसाने में वे ही समर्थ होते हैं जो इस खर्च को वहन कर सकते हैं । कितनों की ही स्थिति ऐसी नहीं होती । उन्हें अविवाहित रहने के लिए विवश होना पड़ता है । अन्यथा उन्हें घर, खेत, पशु, बर्तन आदि बेचकर खर्चीली शादी का साधन जुटाना पड़ता है । फलितार्थ यह होता है कि शादी के साथ ही गरीबी भी गले बँध जाती है और वह सहज पीछा नहीं छोड़ती, प्राय: जीवन भर बनी रहती है ।

तर्क की दृष्टि से सभी इस बुराई की निंदा करते हैं और कहने को अधिकांश लोग यही कहते हैं कि यह बुराई दूर होनी चाहिए । किन्तु मनोबल के अभाव में जब अपनी बारी आती है तो आगे कदम नहीं बढ़ाते । वही करते हैं जो पुराना ढर्रा चल रहा है । सोचते हैं कि हम आगे बढ़कर सुधार-परिवर्तन करेंगे तो समाज में निंदा होगी ।

समाज भी ऐसा है जिसमें हजार बुराइयाँ भरी पड़ी हैं पर कोई किसी की रोक-टोक नहीं करता । फिर शादियों संबंधी सुधार के समय 'समाज का भय' कैसे इतना बलिष्ठ हो जाता है जिसकी उपेक्षा नहीं बन पड़ती । वस्तुत: यह अपने ही मनोबल का अभाव है । समाज का गठन ऐसा कहाँ है जो किन्हीं बुराइयों को रोक सके और सुप्रचलनों को चला सके । एक ढर्रे का नाम ही समाज रह गया है ।

कम हर्ज की बुराइयों को कुछ दिन सहा भी जा सकता है पर जिनसे हर किसी का सर्वनाश ही हो सका है उनके उन्मूलन में तो सामान्य विचारशीलों को भी आगे आना चाहिए । पर जो मूर्धन्य हैं, प्रतिभावान हैं, नेतृत्व की क्षमता संपन्न हैं, उन्हें तो सर्वप्रथम अग्रणी होना चाहिए । श्रेष्ठ कार्यों का शुभारंभ जिस प्रकार श्रेय सम्मान प्रदान करता है वैसे ही कुप्रचलनों का संहार भी गौरव प्रदान करता है । कभी जंगलों में तेंदुए, भेड़िए बढ़ जाते थे और वे वनवासियों के पशुओं, बच्चों को उठा ले जाते थे । प्रजा की पुकार पर जो योद्धा उनका पीछा करने और मार भगाने का साहस करते थे उनकी भी प्रशंसा होती थी । दुष्टता का उन्मूलन भी मनुष्य को पराक्रमी और यशस्वी बनाता है ।

इन दिनों हर दृष्टि से हानिकारक प्रथाओं में खर्चीली शादियाँ इतनी भयंकर है जिनकी तुलना विषधर सर्पों और खूँखार भेड़ियों से की जाय तो कुछ अत्युक्ति न होगी । इसे मिटता हुआ सभी देखना चाहते हैं पर आगे बढ़ने की हिम्मत नहीं पड़ती । समय आने पर विरोध की आवाज भी बंद कर लेते हैं, उसी ढर्रे पर लुढ़कने लगते हैं जिसमें हर दृष्टि से हर किसी का अनर्थ ही अनर्थ है ।

प्रश्न केवल हिम्मत करके आगे आने भर का है । समाज में अधिकांश लोग तंबाकू पीते हैं पर जो नहीं पीते या छोड़ देते हैं उन्हें न कोई दंड देता है, न पुरस्कार । दो चार दिन अपनी रुचि और मर्जी की समीक्षा कर लेते हैं पर उस कथन में इतनी सामर्थ्य नहीं होती जो किसी का कुछ बिगाड़ सके । माँसाहार, मद्यपान जैसी प्रथाओं को कोई विरोधी रोक नहीं पाता तो किसी बुरी बात को छोड़ देने में कोई तूफान बरस पड़ेगा जैसी कोई बात नहीं है ।

सादगी के विवाहों का प्रस्ताव लड़के वालों की ओर से होना चाहिए । अभिभावकों को प्रतिज्ञा करनी चाहिए कि हम अपने लड़के की शादी बिना किसी खर्च के करेंगे । इसी प्रकार विवाह योग्य लड़कों को भी प्रतिज्ञा करनी चाहिए कि हम दहेज किसी भी अर्थ में स्वीकार न करेंगे । लड़की वालों में से काली कमाई वालों को छोड़कर हर कोई इस प्रस्ताव को स्वीकार करेगा । उसकी लड़की के हाथ पीले हो जायँ और खर्च भी न करना पड़े, इससे अच्छा सुयोग और क्या हो सकता है ?

लड़की वाले अमीर घर का लड़का ढूँढ़ने के फेर में अधिक दहेज देने के लिए बाध्य होते हैं । उन्हें भी अपना दृष्टिकोण बदलना चाहिए और स्वर्गीय नेहरू का वह सूत्र याद रखना चाहिए कि 'आराम हराम है' । जिन घरों में नौकर सब काम करते हैं उनके मालिक को और मालकिनों को दुर्बलता और बीमारियों का दंड भुगतना पड़ता है । परिश्रमी का शरीर भी स्वस्थ रहता है और दिमाग भी अधिक तीक्ष्ण एवं प्रखर रहता है । काम को दुर्भाग्य नहीं, सौभाग्य मानना चाहिए ।

अपनी लड़की किसी मध्यवर्ती परिवार में जाय, घर का काम-काज करे, पति के व्यवसाय में हाथ बँटाये तो यह उसके सौभाग्य का चिह्न है । ऐसे घरों में प्रतिभावान लड़कियों की इज्जत भी होती है और दहेज का सवाल भी प्रमुख नहीं होता । जितना पैसा लड़की के विवाह में लगाना हो उतना

उसकी शिक्षा और तंदुरुस्ती अच्छी बनाने में लगा देना चाहिए । लड़का ऐसा ढूँढ़ना चाहिए जो परिश्रम की कमाई खाता हो और अपनी पत्नी को भी कमाने के लिए उत्साह प्रदर्शित करने में बुरा न मानता हो । प्रगतिशील व्यक्ति अपनी स्त्रियों को भी आगे बढ़ाते, ऊँचा उठाते हैं । उन्हें दबोच कर नहीं रखते ।

समाज में एक ऐसी नई पीढ़ी विकसित होनी चाहिए जो अमीरी की आरामतलबी से दूर हो और परिश्रम में गर्व-गौरव समझे । ऐसे वर्ग खर्चीली शादियों से बच सकते हैं । न उन्हें दहेज माँगने की जरूरत पड़ेगी और न जेवर चढ़ाने, बारात ले जाने की धूम-धमाके की ।

विवाह संसार भर में होता है पर उसका स्वरूप एक घरेलू उत्सव जैसा होता है । दोनों पक्षों के परिवारों के मुश्किल से बीस-तीस व्यक्ति ही उस उत्सव में सम्मिलित होते हैं और घंटे आधा घंटे का हर्षोल्लास मनाकर अपने घरों को वापस चले जाते हैं । गिर्जे में शादी का प्रतिज्ञापत्र लिख लिया जाता है या अदालती रजिस्ट्री हो जाती है । फिर भारत पर ही क्या आसमान से आफत टूटती है कि उस सीधे से काम को इतना खर्चीला बनाकर अपना और संबंधी का दिवाला पिटाया जाय ?

विचारशील लोग अपने लड़के-लड़कियों की शादियाँ बिना धूमधाम के नितांत सादगी के साथ करने लगें तो वह प्रचलन भी आसानी से चल पड़ेगा । बड़ों की देखा-देखी छोटों द्वारा नकल किए जाने की भेड़चाल ने ही खर्चीली शादियों का प्रचलन चलाया है । यदि वह प्रभावशाली वर्ग इस संदर्भ में सादगी अपनाने लगे तो उसी प्रकार की प्रथा चल पड़ने में भी देर न लगेगी ।

खर्चीली शादियाँ परले सिरे की मूर्खता

संसार का वंश चक्र नर-नारी के सहकार पर निर्भर और गतिशील है । इसका विचारपूर्ण सुयोग-संयोग विवाह कहलाता है । मनुष्यों में यह प्रथा सर्वत्र प्रचलित है । विवाह दुनियाँ भर में होते हैं इसलिए उन्हें सरलता और सादगी के साथ संपन्न कर लिया जाता है । वह कोई अनोखापन नहीं है जिसके लिए धरती-आसमान सिर पर उठाए जायें ।

संसार में विवाहों के रस्म-रिवाज तो अलग-अलग तरह के हैं पर वे सामान्य स्तर के और सादगी भरे होते हैं, ताकि गरीबी की रेखा से नीचे रहने वाले आसानी से उस कृत्य को बिना कोई अतिरिक्त कठिनाई उठाए संपन्न कर सकें ।

अमीरों में भी फिजूलखर्ची को एक प्रकार की उद्दंडता माना जाता है । ओछे लोग ही उपलब्ध पैसे की होली जलाते और तमाशा बनाते हैं । समझदार पैसे का महत्त्व समझते हैं । उसका उपयोग ऐसे कामों में करते हैं जिनसे अपनी, अपनों की तथा सर्वसाधारण की भलाई हो सके । इन प्रयोजनों से रहित निरर्थक कृत्यों में पैसा उड़ाना पुराने समय में भी बुरा समझा जाता था । अब जबकि समझदारी की कसौटी हर काम पर लगाई जा रही है, अपव्यय को और भी अधिक निंदनीय ठहराया जाने लगा है ।

अपव्ययों में नशेबाजी, फैशनपरस्ती, आवारागर्दी, अतिवादी विलासिता को गिना जाता है । इस प्रकार के प्रसंगों में जिन्हें पैसा उड़ाते देखा जाता है उनकी निंदा होती है । कहा जाता है कि हराम की कमाई ही बेदर्दी से खर्च की जाती है । इस मान्यता के अनुरूप पैसे की आतिशबाजी जलाने वालों को अनीति उपार्जनकर्त्ता माना जाता है । इनके प्रति दर्शकों में ईर्ष्या भी भड़कती है और निंदा भी सहज ही होने लगती है । समाजवादी प्रवाह का प्रभाव दूर-दूर तक पहुँचा है । राजा, सामंत, जमींदार, साहूकार को उस लहर ने धराशायी कर दिया । सोचा जाता है कि पैसे का उपयोग अभावग्रस्तता को दूर करने एवं सत्प्रवृत्तियों को बढ़ाने में होना चाहिए । इसके स्थान पर जो उसे फूँकते, उड़ाते, बर्बाद करते देखे जाते हैं उनके प्रति समझदारों का सहज आक्रोश उभरता है । वह जमाना अब बहुत पीछे छूट गया जिसमें अमीरी को भाग्यवान होने का चिह्न माना जाता था और उनकी फिजूलखर्ची को 'दरिया दिली' के नाम से सराहा जाता था । अब तो बात ठीक इससे उल्टी हो गई है ।

ऐसे समय में विवाह शादियों के समय आँखें मूँदकर पैसा उड़ाना कहीं भी, किसी को भी अखरने वाला लगता है । भले ही वह अनुभवकर्त्ताओं की अपनी जेब से खर्च न हुआ हो । बहुरूपिए अपने वास्तविक रूप से भिन्न प्रकार की शक्लें बनाते और बोलियाँ बोलते हैं । स्वांग करने वाले श्रृंगार बदलकर वेश बदलते और अभिनय द्वारा दर्शकों का मनोरंजन करते हैं । बच्चे रामलीला देखने भागते हैं, वे वहाँ से कागज के गदा, खपच्चियों के धनुष और बंदरों के मुखौटे खरीदकर लाते हैं । उन्हें दिखाते फिरने की उचक-मचक में खाना-पीना तक भूल जाते हैं । ऐसी ही बालक्रीड़ा वे लोग करते हैं जो ब्याह-शादियों के सरंजाम जुटाते अथवा बरात में सज-धज कर जाते हैं । वेश धारण की तरह उनके नखरे भी बदल जाते हैं और इस प्रकार ऐंठ-अकड़ की

चाल-ढाल अपनाते हैं मानों कहीं से मुहर-अशर्फियों का गड़ा हुआ खजाना उन्हें ही मिल गया हो । स्वांग सभी ओछा बन जाता है पर तब तो हँसी रोके नहीं रुकती जब गरीबों द्वारा अमीरी का प्रदर्शन करने के लिए शेर की खाल ओढ़े हुए गधे के समान साथियों के सामने वनराज होने की डींग हाँकते देखा जाता है । अपने विवाह उत्सवों की आदि से अंत तक सभी हरकतें इसी प्रकार होती देखी जाती हैं । यह सारी खिलवाड़ पूरी तरह मँहगी-फिजूलखर्ची से भरी-पूरी होती है जिसका तात्पर्य इस प्रसंग में किसी भी प्रकार सम्मिलित होने वाले का अपनी औकात से अधिक खर्च करना और अंततः दिवालिया बनने की ओर घिसटना है ।

सभी जानते हैं कि इस घोर मँहगाई के जमाने में किसी भले मानस का खर्च मुश्किल से चलता है । भोजन, वस्त्र, मकान खर्च ही इतना हो जाता है कि बच्चों की शिक्षा, दीक्षा, स्वास्थ्य, स्वावलंबन आदि के लिए जिन खर्चों की नितांत आवश्यकता है उनमें भी कटौती करनी पड़ती है फिर अतिथि सत्कार से लेकर आकस्मिक खर्चे, तीज-त्यौहारों के खर्च इतने अधिक लगे रहते हैं कि कोई सद्गृहस्थ अपनी गाड़ी मुश्किल से खींच पाता है ।

औसत गृहस्थ को अपनी असमर्थता के समय में साधारणतया पाँच लड़की-लड़कों के विवाह करने पड़ते हैं । वे सभी बढ़ती मँहगाई के साथ अधिक खर्चीले होते जाते हैं । जिनके पास फालतू कमाई के स्रोत हैं उन्हें सूझता नहीं कि उस चोरी की आय का करें क्या ? बैंक में डाल नहीं सकते । घर बनाने, व्यवसाय बढ़ाने में भी सरकारी जाँच-पड़ताल पीछे लगती है । इस प्रकार का जमा पैसा निकल भागने के लिए आतुर रहता है । विलासी अपव्ययों में शादियों की धूमधाम ही सरल पड़ती है । उसमें लोगों पर चौंकाने वाले बड़प्पन की छाप डालने का अवसर भी मिलता है और चाटुकारों द्वारा प्रस्तुत की गई वाहवाही से भी मन प्रसन्न होता है । ऐसा कुछ तो उनने सुना-समझा नहीं होता कि अपने आवश्यक खर्च से बचा हुआ पैसा किन्हीं ऐसे सत्कर्मों में भी लगाया जा सकता है जिससे पिछड़ों को राहत मिले और सत्प्रवृत्तियों के बढ़ाने में उपयोगी बन पड़े । कृपणता और अवांछनीयता की संयुक्त कमाई सत्प्रयोजनों में लगने के लिए सहज तैयार नहीं होती । उसे दुर्व्यसनों से लेकर अहंकारी प्रदर्शन करने वाले ठाट-बाट ही रास आते हैं । इसके लिए शादियों में दरिया दिली दिखाते हुए दोनों हाथ पैसा उलीचना

सबसे सरल उपाय जान पड़ता है । वही होता भी है ।

एक उक्ति है कि घोड़ी द्वारा पैरों में लोहे की नाल ठुकवाते देखकर मेढ़की का भी मन नहीं माना । नकल उतारने के लिए उसका मन मचल उठा । उसने भी नाल ठोकने वाले के आगे पैर पसार दिए और कहा–"मैं क्या घोड़ी से पीछे रहूँगी । मैं भी नाल ठुके पैरों से सड़क पर दौड़ लगाऊँगी ।" मना करने पर भी वह न मानी और पैरों के फटने के साथ जान भी गँवा बैठी ।

विवाह–शादियों में भी ऐसा ही होता देखा गया है । फालतू पैसे वालों के ठाट–बाट के प्रदर्शन को देखकर गरीब लोग भी उनकी नकल बनाते हैं । कुटुंबी, रिश्तेदार, संबंधी, पड़ोसी समुदाय में भरे हुए मसखरे तो दूसरों का छप्पर जलने पर हाथ सेंकने की फिकर में रहते ही हैं । वे भी उकसाने में कमी नहीं रहने देते । औकात के भीतर रहने की बात करने पर व्यंग्य वचन बोलते, उपहास उड़ाते हैं । इस दबाव में असमर्थों को भी समर्थों के समतुल्य बनने के लिए वैसा ही ठाट रोपना पड़ता है । कहना न होगा कि पहली शादी में ही घर की जमा पूँजी चुक जाती है और अगली शेष शादियों के समय साधन कहाँ से जुटाये जायें इसका उत्तर देने में अकल जवाब दे जाती है । बर्तन बेचने से लेकर कर्ज लेने तक के साधन जब समाप्त हो जाते हैं तो बेईमानी, चोरी, चालाकी का यदि अवसर बन पड़ता है तो उसे अपनाते हैं अन्यथा दरिद्रता के बीच पलने वाले बच्चे अविवाहित ही रह जाते हैं ।

देश में प्राय: एक करोड़ विवाह हर साल होते हैं । उनमें मँहगे–सस्तों को मिलाकर प्रति विवाह औसत २५ हजार के लगभग खर्च आता है । इस प्रकार २५ हजार करोड़ की रकम प्राय: इसी फिजूलखर्ची में नष्ट हो जाती है, जिसके चले जाने पर खुशहाली के सभी द्वार बंद हो जाते हैं । थोड़ी बहुत कमाई बढ़ने के उपाय बन भी पड़ें तो वे भी इसी अलाव में ईंधन पड़ने की तरह कुछ और चमक–दमक दिखाकर समाप्त हो जाते हैं । दरिद्रता जहाँ की तहाँ बनी रहती है । प्रगति के कोई साधन बन ही नहीं पाते । पूँजी जुट न पाए तो किसी कारोबार का सुयोग कैसे बने । यह इतना बड़ा छिद्र है कि घड़े में कितना ही पानी क्यों न भरा जाय सभी फूटे पैंदे से होकर बह जाएगा । गरीबी भगाओ का लक्ष्य पूरा करने के लिए आजीविका बढ़ाना ही एकमात्र उपाय नहीं है । उसके साथ खर्चीली शादियों के प्रचलन को भी छेद बंद करने की तरह समाप्त करना होगा ।

दाँत घिसाई का दहेज

पिछले दिनों ब्राह्मण वंश में जन्मे व्यक्ति को मिष्ठान्न-पकवान का भोजन कराना पुण्य माना जाता था । समझा जाता था कि इस वंश के लोग देवताओं के कमीशन एजेंट हैं, जो इन्हें दिया जाता है वह ईश्वर तक मनीआर्डर की तरह पहुँच जाता है ।

उन दिनों भोजन और दान बटोरने वाले दाता पर अहसान जताते थे कि हमें तो पेट में व्यर्थ का बोझ लादना पड़ता है, भला तो तुम लोगों का होता है । इसलिए 'दांत घिसाई' की दक्षिणा और चाहिए एवं दक्षिणा न देने पर खाने में हमारे दाँत मुफ्त में घिसा देने से तुम पर पाप और पड़ेगा । पूरा पुण्य लेना है तो ब्राह्मण भोजन के साथ ब्राह्मण दक्षिणा भी देनी चाहिए । धर्मभीरु लोग विवशता से इसे भी किसी प्रकार वहन करते थे ।

ठीक इसी विडंबना की एक दूसरी अनुकृति खड़ी हुई । वर पक्ष की ओर से वधू का सुंदर होना, शिक्षित होना तो आवश्यक माना ही गया । साथ ही 'दांत घिसाई' की दक्षिणा के रूप में दहेज की लंबी-चौड़ी फरमाइश भी किसी प्रकार पूरी कराने की मजबूरी कन्या के पिता पर लादी गई । बेटी वालों का कसूर इतना ही था कि रोटी-कपड़े के मूल्य पर अपनी सुयोग्य लड़की को दासी की तरह जीवन भर के लिए उसकी ससुराल को समर्पित करना पड़ा ! उन महापुरुषों का यह अहसान क्या कम था कि उस लड़की को रोटी-कपड़े देने के बदले बेगारिन की तरह दिन-रात काम में जोतने का भार स्वीकार कर लिया ! यदि उस घर में आश्रय न मिलता तो लड़की भूखी-नंगी मर जाती ! उसे रहने भर का ठौर-ठिकाना न मिलता ! वधू स्वीकारने का इतना बड़ा अहसान है जिसके बदले ससुराल वाले जितनी भी बढ़ी-चढ़ी कीमत वसूल करें, कम है । जब अनाथ, अपंग, निरर्थक लड़की को कृपापूर्वक जिस परिवार ने स्वीकार किया है, उसे यदि सोने-चाँदी में लाद दिया जाय तो भी कम है । परंतु दहेज लोभियों के घर में कुबेर का खजाना और रजवाड़ों जैसा ठाट-बाट पहुँचा दिया जाय तो भी कहा नहीं जा सकता कि उनका नखरा सधा या नहीं । दहेज प्रचलन जो ठहरा । वह पुरखों की परंपरा और खानदान की इज्जत का सवाल जो है । जितना मिले उतना ही कम है । 'दांत घिसाई' की दक्षिणा को ब्राह्मण भी किसी जमाने में बहुत नखरा दिखाकर स्वीकारते थे और अधिक दिए जाने की

फरमाइश करते थे । यजमान सोचता था कि थोड़ा और बोझ उठाया जाय । किसी प्रकार ब्राह्मण देवता को संतुष्ट करके प्रसन्नमुख से लौटते तो देखा जाय । यजमान की भोली भावुकता उनके लिए जेब काटने का एक बड़ा कारण मुद्दतों बनी रही । पर समझदारी की बढ़ोत्तरी के साथ-साथ वह प्रथा तो उठ गई । समझा जाने लगा कि मुफ्त में माल छकाने के अलावा धौंस में दक्षिणा देते रहने में कोई समझदारी नहीं है । जब ब्रह्म परायण ब्राह्मण ही नहीं रहे और उन्हें दिया हुआ धन देवता-पितरों तक पहुँचने की कोई गारंटी नहीं रही तो उसे ब्राह्मणों पर क्यों लुटाया जाय ? अब पहले की तरह ब्रह्मभोज की धूम नहीं रहती ।

इसे दुर्भाग्य ही कहना चाहिए कि कन्या के विवाह में वर पक्ष अपनी दांत घिसाई की बढ़ी-चढ़ी फरमाइश का मोलभाव कम करने के लिए तैयार नहीं । सरकारी कानून बहुत दिन पहले भी था, अब और कड़ा हो गया है पर इससे दहेज कम नहीं हुआ । भले ही दहेज को बुरा माना जाय, पर उसकी जड़ें बहुत गहरी हैं । सो वह पहले की अपेक्षा कम वसूल कर अपना दाँव तो चला ही लेता है । चोरी से सही, जेबकटी से सही, पैसा उतना हाथ लग जाय तो उचक्के का समाधान हो जाता है । मुफ्त में माल पाने की आदत छूटती भी तो नहीं । विशेषतया तब जब जुटाने वाला उसके लिए अर्द्ध स्वीकृति पहले से ही संजोए बैठा हो । रिश्वत, व्यभिचार, मिलावट आदि के सभी विरुद्ध है पर उतने भर से वे रुकते कहाँ हैं ? जहाँ आपस में तालमेल बैठ जाता है वहाँ गाड़ी पटरी पर सहज लुढ़कती रहती है ।

दहेज अब ऐसा अपराध बन गया है जो चाय-बीड़ी की तरह आदत में शुमार होने लगा है । उसे ससुराल वाले अपना 'हक' समझते हैं । दूसरे घरों में जब इसका लाभ उठाया जाता है, थोड़े नखरे दिखाने पर वह सहज ही मिल भी जाता है तो उन्हें आदर्शवाद के नाम पर छोड़ा क्यों जाय ? हाथ आगे करके न सही पीठ के पीछे से भी तो उसे लिया जा सकता है ।

वधुओं को सताया जाता रहता है कि वे विवाह के समय ही नहीं, उसके बाद भी पिता के घर के माल-असबाब ढोती रहें और ससुराल वालों का घर भरती रहें क्योंकि उन्हें उन उदारचेताओं ने अपने घर में अपंग, अपाहिज समझकर स्थान जो दिया है, उसके लिए रोटी-कपड़े का प्रबंध जो किया है । ऐसी दशा में अपने उपकार के बदले यदि प्रतिदान दहेज के रूप में चाहते रहते हैं तो क्या बेजा है ।

आज का लोक मानस इसी प्रकार का है । नारी का अवमूल्यन कर देने के उपरांत उसे इस स्तर का बना दिया गया है कि उसे कोई मुफ्त में भी स्वीकार क्यों करे ? उसे घर के एक कोने में आश्रय देने की बढ़ी-चढ़ी कीमत क्यों न वसूलें ? दाँत घिसाई वाला तर्क क्यों न प्रस्तुत करें ? आखिर शोषित कोई भी तर्क न दे सके-ऐसी भी क्या बात ?

इस उलटे प्रवाह को उलटना होगा । समझना और समझाना होगा कि जब गाय-बकरी तक का मूल्य लिया जाता है तो लड़की को किसी के हवाले करने से पूर्व लड़के वालों से उसका मोल या भाड़ा क्यों न माँगा जाय ? दहेज ससुराल वालों को देनी पड़े तो ही इसमें औचित्य की कोई झलक देखी जा सकती है ।

प्रकृति इसका प्रबंध कर रही है । केरल, पंजाब आदि प्रांतों में लड़के बढ़ रहे हैं और लड़कियों की संख्या कम होती जा रही है । फिर इस अनीति के विरोध में समझदार लड़कियाँ भी तन कर खड़ी हो रही हैं । वे सम्मान सहित किसी का घर बसाने और संभालने जाना चाहती हैं । ऐसे बहेलियों के यहाँ नहीं जो कैदी की तरह रखें और रोटी के बदले दिन-रात कोल्हू में जोतें और पग-पग पर तिरस्कार करें ।

यदि वधू से पैसा माँगना ही सुहाता है तो उसे मजूरी करके धन लाने के लिए कहा जाय ? पिता के घर को खाली करके साथ में लाते रहने के लिए क्यों कहा जाय ? उनका इतना ही तो कसूर है कि लोकाचार को देखते हुए सुयोग्य होते हुए भी बच्ची को इस आशा से सौंप दिया जाता है कि उसे चैन और सम्मान मिलेगा ।

यदि सब कुछ आशा और आदर्शों के विपरीत हो जाता है, आए दिन वधुएँ प्रताड़ित की जाती हैं तो विचारणीय यह है कि लड़कियों का विवाह करना अनिवार्य समझा जाय या उन्हें स्वावलंबी बनने का परामर्श दिया जाय ।

सोचना लड़के वाले को भी पड़ेगा कि उनके परिवार में भी लड़कियाँ होंगी या होने वाली होंगी । तब उन्हें भी उसी घाट उतरना पड़ेगा और उसी प्रकार गाँठ काटने और अपमान सहने के लिए तैयार होना होगा जैसा कि वधू को पराए घर की समझकर ऐसा बरताव बरता जाता है जैसा कि घर आए सम्मानित अतिथि के साथ नहीं ही बरता जाना चाहिए । दहेज लेकर हम

वधुओं को ही नहीं अपनी बेटियों को भी उसी चक्की में पिसने का पथ प्रशस्त करते हैं ।

कन्यादान के साथ दहेज यह कहकर माँगा जाता है कि पिता को पुण्य मिलेगा और लड़की सुखी रहेगी । किन्तु दहेज तो ससुराल वालों के पास चला जाता है । लड़की तो उसमें से यत्किंचित मात्र ही ले पाती है । उस मोटी राशि को तो ससुराल वाले दांत घिसाई में ही हड़प जाते हैं । भगवान जाने यह तथ्य कब जनमानस समझ पाएगा ।

दहेज लेना अत्याचार एवं देना अनाचार का प्रतीक

उत्पादन और उपभोक्ता में जो पक्ष कमी का होता है उसे प्राप्त करने के लिए खुशामद करनी पड़ती है । भाग-दौड़ में लगना पड़ता है तथा आवश्यकता के अनुरूप खर्च भी अधिक करना पड़ता है । यह सामान्य बुद्धि का लोक व्यवहार है । इतनी जानकारी हर कोई रखता है, न रखता हो तो मंडी में जाने पर आँखें खुल जाती हैं और वस्तुस्थिति कोई भी बता देता है ।

उपयोगिता की दृष्टि से नर के लिए नारी अधिक आवश्यक एवं उपयोगी है । पत्नी चौकीदारी, रसोईदारिन, व्यवस्थापिका, सेविका और मनोविनोद की दृष्टि से कहीं अधिक उपयोगी है । बदले में वह रोटी, कपड़ा और यत्किंचित जेब खर्च ही पाती है । आज्ञाकारिणी सेविका के रूप में पति के निमित्त ही नहीं ससुराल के पूरे परिवार के लिए वधू का आगमन हर प्रकार से नफे का सौदा है । लड़की का पिता खिलाता-पिलाता और पढ़ाता-लिखाता है । जब कुछ काम-धाम करने योग्य होती है तब उसकी योग्यता एवं सेवा का लाभ उठाने के लिए उसे दूसरे के घर भेज दिया जाता है ।

यह क्रम चलता तो सब जगह है पर लड़की वाले को इसके लिए लड़के को रिश्वत संसार में कहीं भी नहीं देनी पड़ती । विकसित लोगों में पश्चिमवासी अधिक शिक्षित, सभ्य और संपन्न समझे जाते हैं । वहाँ भी लड़के अपने लिए उपयुक्त लड़कियाँ तलाशते फिरते हैं । जिस दिन विवाह होता है लड़की को उपहार देते हैं और उसके घरवालों को दावत पर बुलाते हैं । लाभ में लड़का रहा इसलिए विशेष खुशी उसी को होनी चाहिए और इसके उपलक्ष्य में प्रसन्नता व्यक्त करने का लोकाचार भी उसी को निभाना चाहिए । यही होता भी है ।

मुस्लिम समाज में पर्दे का झंझट है इसलिए लड़के के अभिभावक ही वधू तलाश करने निकलते हैं । प्रस्ताव उन्हीं को करना पड़ता है । स्वीकृत करना या अस्वीकृत करना यह कन्या के परिवार की मर्जी पर निर्भर रहता है और मना कर देने पर पता लगाकर अन्यत्र जाते हैं और अपना परिचय देते हुए अनुरोध करते हैं । हाँ में उत्तर मिलने पर बहुत प्रसन्न होते हैं और नियत समय पर विवाह हो जाता है । इसमें लड़के वाले इस बात का ध्यान रखते हैं कि कन्या परिवार पर कोई आर्थिक दबाव न पड़े । इसके लिए अपनी ओर से वे सज्जनता ही दिखाते रहते हैं और कुछ खर्च किया जा रहा हो तो इन्कार भी करते रहते हैं ।

पहाड़ी क्षेत्रों में, आदिवासी जनजातियों में और हरिजनों में भी यही रिवाज है कि विवाहोत्सव में कुछ खर्च पड़ता है तो वह वर पक्ष को ही देना पड़ता है । उनके यहाँ भी अनुरोधकर्त्ता वर पक्ष के लोग ही होते हैं । कन्या पक्ष नखरे ही दिखाता रहता है । जब बात बन जाती है तो वर पक्ष बहुत प्रसन्न होता है । जिनकी आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं होती उनके यहाँ लड़के को कुछ वर्ष या महीने लड़की के पिता के यहाँ नौकरी करनी पड़ती है ।

कारण दो हैं । एक यह कि संसार भर में विवाह योग्य लड़कियों की संख्या कम और लड़कों की अधिक होती है । प्रकृति का कुछ ऐसा क्रम भी है कि जन्मते तो लड़के अधिक है और यद्यपि उनकी मृत्यु संख्या अधिक होती है तो भी विवाह योग्य होने तक लड़के अधिक और लड़कियाँ कम रह जाती हैं ।

राष्ट्र संघ द्वारा संग्रहीत आँकड़ों द्वारा स्पष्ट होता है कि लड़कियाँ जीवटदार होने के कारण बीमारियों और अकाल मृत्यु से बची रहती हैं । उन्हें प्रजनन योग्य अतिरिक्त क्षमता की आवश्यकता पड़ती है, इसलिए शारीरिक विकास, जीवन शक्ति और दीर्घायु की दृष्टि से वे ही समर्थ होती हैं । साठ वर्ष की आयु होने तक महिलाओं की संख्या दस प्रतिशत अधिक पाई जाती है क्योंकि बुड्ढे पहले ही बिस्तर गोल कर चुके होते हैं ।

पहाड़ी इलाकों में देहरादून के जौनसार बाबर क्षेत्र में एक वधू के उस परिवार के सभी भाई पति होते हैं । इसका कारण लड़कियों का कम और लड़कों का अधिक होना है । यूरोप, अफ्रीका, अमेरिका के देशों के आँकड़े भी यही बताते हैं । अरब देशों में अन्यत्र की अपेक्षा यह कठिनाई अधिक है ।

वहाँ लड़के का विवाह होना बड़ी प्रसन्नता की बात मानी जाती है और आगंतुक नव वधू को ससुराल वाले तथा संबंधी उपहारों से लाद देते हैं ।

संसार भर में भारत ही एक अभागा देश है जहाँ लड़की वालों को लड़के तलाश करने मारा-मारा फिरना पड़ता है । इतना ही नहीं दहेज में एक बड़ी राशि का सौदा करना पड़ता है । जिन्हें जितना अधिक दहेज मिलता है वे अपने बड़प्पन पर उतना ही अहंकार करते हैं । साथ ही लड़की वालों पर अपना रौब जमाते हैं ।

किन्तु यह प्रथा उत्तर भारत के सवर्ण लोगों में ही है । दक्षिण भारत और पूर्व तथा पश्चिम में भी ऐसे रिवाज नहीं हैं । मात्र राजस्थान, उत्तरप्रदेश और बिहार के सवर्णों में ही यह विचित्र प्रथा अधिक है । मध्यप्रदेश में श्रमिक वर्ग बहुत है, साथ ही जाति की दृष्टि से भी छोटी जातियाँ अधिक हैं । वहाँ दहेज माँगने की जो हिम्मत करें-ऐसे सवर्ण एवं मालदार कम ही हैं ।

जिन बिरादरियों में लड़के वाले दहेज माँगते हैं, उनका कारण यह है कि जातियों में भी उपजातियों के खंड-विखंड अधिक हैं । सवर्ण अपनी ही उपजाति में विवाह करते हैं । भारत गरीब देश है, यहाँ शिक्षित और धनवान कम ही मिलते हैं । जो थोड़े से होते हैं उन्हीं को लोग अपनी लड़कियों को देना चाहते हैं । इसलिए समाचार मिलने पर कितने ही देखने वाले आना आरंभ कर देते हैं । भले ही उन्हें लड़का पसंद न आए पर आगंतुकों की भीड़ देखकर लड़के वाले के दिमाग खराब हो जाते हैं और हैसियत से दूने-चौगुने पैसे माँगना शुरू कर देते हैं । एक को ज्यादा पैसा मिल जाने पर उसकी देखादेखी और भी सोचते हैं कि हमें भी इतना ही मिलना चाहिए नहीं तो हेठी होगी । इसी प्रकार देखा-देखी रिवाज चल पड़ता है और मोलभाव होने लगता है ।

सवर्ण बिरादरियों में भी अभी तक कई जातियाँ ऐसी हैं जिनमें दहेज का कोई जिक्र नहीं । राजस्थान के कुछ इलाकों में तो लड़की पक्ष के लोग लड़के के यहाँ बारात लेकर जाते हैं और उन्हें अच्छी खातिर करनी पड़ती है । कई जातियों में दोनों पक्ष के विवाह का खर्च बेटे वाले को ही देना पड़ता है । ऐसी बिरादरियाँ बहुत कम हैं जहाँ बेटे वालों को बहुत पैसा देना पड़ता है । देने वाले अमीर वे होते हैं जिनके पास चोरी, बेईमानी की, नंबर दो की अंधाधुंध आमदनी होती है ।

यह प्रथा कहाँ कितने लोगों में किस सीमा तक है यह जाँच-पड़ताल करने का विषय है । जहाँ भी ऐसा देन-लेन होता है वहाँ वर पक्ष पर बहुत अधिक धिक्कार पड़ती है और देने वाले को चोर, अनीति की कमाई करने वाला माना जाता है । सरकार दहेज विरोधी कानून बना चुकी है । इस पर भी कई गुपचुप देते हैं और यदि लड़की किसी दुर्घटना में मर जाय तो भी सभी एक मुँह से यही कहते हैं कि इन हत्यारों ने दहेज के लोभ में लड़की को जलाकर या जहर देकर मार डाला । ऐसे घर में भला आदमी फिर दुबारा अपनी बेटी की हत्या कराने के लिए भेजने को तैयार नहीं होगा ।

दहेज अब काफी बदनाम हो चुका है । उसे देने वाले और लेने वाले दोनों ही पक्ष दुष्ट अनाचारी माने जाते हैं । वह समय अब समाप्त हो चला जिसमें दहेज के कारण किसी की इज्जत बढ़ती थी । अब तो देना अनाचार, लेना अत्याचार का प्रतीक बन गया है । इन दोनों दुष्कर्मों का समूल नाश होना अति आवश्यक है ।

विवाह इस तरह होने चाहिए

शारीरिक और मानसिक दृष्टि से युवक-युवतियों को परिपुष्ट-परिपक्व बनने में समय लगता है । यदि ऐसी ही जोड़ी तलाशनी हो तो वह बड़ी आयु की ही मिलेगी । लड़कों को पढ़ने-लिखने की, आने-जाने की, ट्यूशन की सुविधा अधिक मिलती है । इसलिए वे जितने दिन में अमुक पढ़ाई पूरी करते हैं, योग्यता अर्जित करते हैं उतनी करने में स्वभावतः लड़कियों को अधिक समय लगता है । लड़कों का छोटी उम्र में ही बाल मंदिरों में जाने का सिलसिला शुरू हो जाता है । इसमें लगने वाली फीस भी घर वाले खुशी-खुशी बर्दाश्त कर लेते हैं । किन्तु कन्याओं को यह लाभ नहीं मिलता है । वे प्रायः पाँच वर्ष से अधिक की हो जाती हैं तब कहीं प्राइमरी स्कूल में भर्ती होती हैं । लड़कों के लिए जल्दी दर्जा चढ़ाने और फेल न होने देने के लिए ट्यूशन भी लगाए जाते हैं पर लड़कियों को ऐसी सुविधा मात्र बड़े घरानों में ही मिलती है । इस फेर में लड़कियाँ आयु और कक्षा के हिसाब से कुछ पीछे ही रहती हैं ।

इसके अतिरिक्त शिक्षित लड़कियों के लिए उपयुक्त लड़का ढूँढ़ने में भी दसियों देखभालें रद्द करनी पड़ती हैं । लड़कियों की आयु बढ़ जाती है

जबकि लड़कों को लोग बड़ा नहीं होने देते । उस हुंडी को जितनी जल्दी भुनाया जा सके भुना लेते हैं । लड़कियाँ पढ़ाई पूरी करने में बड़ी हो जाती हैं । सयानी लड़कियों की रुचि भी देखनी पड़ती है । वे अनुपयुक्त स्थानों में जाने की अपेक्षा कुमारी रहना अधिक पसंद करती हैं । सुयोग्य लड़के एक तो कम उम्र में ही घिर जाते हैं, फिर उनकी कीमत भी इतनी अधिक होती है कि सामान्य स्तर का व्यक्ति उतना जुटा नहीं पाता । ऐसी दशा में कितनी ही लड़कियाँ बड़ी उम्र की हो जाती हैं । फिर उनसे भी बड़ी उम्र का लड़का खाली मिलना और भी कठिन हो जाता है ।

अपने समाज में एक रिवाज यह भी है कि लड़की से लड़का बड़ा होना चाहिए । लड़की वाले भी यही चाहते हैं और लड़के वाले भी । डर यह रहता है कि बड़ी आयु की लड़की होगी तो वह विकसित स्तर की होगी, लड़का बुद्धू होगा तो वह उससे दबेगी नहीं । मारपीट, गाली-गलौच भी न सहेगी । इसलिए लड़की की उम्र अपेक्षाकृत छोटी ही होनी चाहिए ताकि उसे कारणवश या अकारण ही चाहे जब डराया-धमकाया, मारा-पीटा जा सके और वह स्वाभिमान जागृत न हो पाने के कारण उस सबको सहती, सुनती रहे । वर से छोटी उम्र की लड़की ढूँढ़ने के ऐसे ही कुछ कारण हो सकते हैं ।

वस्तुतः मनुष्य मनुष्य है और प्रकृति प्रकृति । नर और नारी दोनों के ही शारीरिक, मानसिक विकास की आयु समान है । पच्चीस वर्ष तक दोनों के शरीर समान रूप से बढ़ते और परिपक्व होते हैं । यह आयु विवाह की मानी जाती है । प्रचलन के अनुसार लड़की लड़के से कम उम्र की पसंद की जाती है जबकि ऐसा कोई वास्तविक कारण है नहीं । दोनों समान आयु के भी हो सकते हैं ।

यदि छोटे-बड़े की बात आवश्यक समझी जाती हो तो यह भी हो सकता है कि लड़की बड़ी हो और लड़का कुछ वर्ष छोटा । कच्ची आयु में तो छोटे-बड़े का कुछ कारण समझा भी जा सकता है किन्तु जब दोनों तरुण हो गए तो अंतर देखने की बात समाप्त हुई समझी जानी चाहिए । लड़की बड़ी भी हो सकती है और लड़का कुछ छोटा भी । नैपोलियन की, अब्राहम लिंकन की पत्नियाँ उनसे कई कई वर्ष बड़ी थीं । इस्लाम धर्म के संस्थापक हजरत मुहम्मद साहब की धर्मपत्नी फातिमा पति की अपेक्षा बीस से भी अधिक वर्ष बड़ी थीं । कृष्ण के बड़े भाई बलराम की पत्नी रेवती उनसे बहुत

बड़ी थीं । इस अंतर से उनके दांपत्य जीवन में किसी प्रकार का कोई व्यवधान नहीं पड़ा । वे लोग सुखपूर्वक अपने गृहस्थ धर्म का निर्वाह करते रहे । यदि लड़की से लड़का कुछ वर्ष बड़ा हो सकता है तो इसमें क्या हर्ज हो सकता है कि वर से वधू भी कई वर्ष बड़ी हो । बड़ी आयु की पत्नी घर-गृहस्थी संभालने में, बच्चों को सुविकसित स्थिति में जन्म देने में अधिक सफल हो सकती है । पति के ऊपर भार न रहकर, उनसे वे अच्छे साथी और सहयोगी की भूमिका निभा सकती हैं ।

विवाहोत्सव एक ऐसा ही पारिवारिक हर्षोल्लास का आयोजन है जैसे कि दीवाली, दशहरा आदि मनाए जा सकते हैं । इनमें घर-परिवार के लोग एकत्रित होते, मंगल गीत गाते, मिल-जुलकर जलपान, प्रीतिभोज आदि सामूहिक आयोजन करते हैं । मायके से बिदाई, लड़के के घर में नया प्रवेश यह अवसर प्रसन्नता भरा माना जा सकता है । इसकी अभिव्यक्ति के लिए घर में कुछ रौनक हो, दीपक जलें, गीत-वाद्यों का शुगल हो, खान-पान चले, दोनों पक्ष के स्वजन-संबंधी उस समारोह में सम्मिलित हों । विवाह संस्कार के मंत्रोच्चार, हवन आदि का उपक्रम रहे तो कुछ हर्ज की बात नहीं है । इस सारे समारोह में १००-२०० रुपया खर्च हो जाय तो भी हर्ज नहीं । यह समारोह दोनों पक्षों के लिए समान प्रसन्नता का है । इसलिए इसका खर्च दोनों पक्ष मिल-जुलकर वहन करें तो ज्यादा अच्छा है । इसमें समानता का बोध भी होता है और यह प्रतीत होता है कि किसी पर किसी का बोझ लदा नहीं है । दोनों ने इस मिलन सम्मेलन में समान रूप से हाथ बँटाया है । किसी ने किसी को विवश, बाध्य नहीं किया । दोनों पक्षों की अभिव्यक्ति समान रही । हमें इसी प्रचलन का शुभारंभ करना चाहिए । विदेशों में भी विवाह होते हैं पर उनका स्वरूप ऐसी ही सादगी व प्रफुल्लता से जुड़ा होता है । किसी को इसके लिए आर्थिक चिंता नहीं करनी पड़ती, छोटे घरेलू उत्सव में धन-दौलत की बड़ी सी फिजूलखर्ची हो ही नहीं सकती । बौद्धों, ईसाइयों, मुसलमानों में विवाह संस्कार कुछ घंटों में निपट जाते हैं ।

इन दिनों अपने यहाँ वे रिवाज बने हुए हैं जो सामंतकाल में कन्या-अपहरण के दिनों प्रयुक्त किए जाते थे । वर-पक्ष के लोग डकैतों की तरह फौज बनाकर बंदूकें चलाते हुए बेटी वाले के घर पर धावा बोलते थे । लड़की को रोती-कलपती उठाकर ले जाते थे । बेटी वाले में यदि सामना

करने की शक्ति न हुई तो वह आत्मसमर्पण कर देता था। घर में जो थाली, बर्तन, कपड़ा, जेवर आदि होता था, उसे विजेता की तरह लूटकर ले जाया जाता था। यह लूट लड़की वाले ने मान्य कर ली इसके प्रमाणस्वरूप जो लुटेरा समुदाय आया था उसकी आवभगत करनी पड़ती थी, मिष्ठान्न, पकवानों की दावत, ज्यौनार देनी पड़ती थी और कन्या को सज-धज के साथ बिदा करना पड़ता था। इसमें आक्रमणकारी की विजय मानी जाती थी और जिन पर आक्रमण हुआ उनको पराजय माननी पड़ती थी। वे अपनी हार गिड़गिड़ाते हुए, भेंट-उपहार देते हुए स्वीकार करते थे। कन्या बलपूर्वक अपहरण की हुई मानी जाती थी। उस पर पूरा अधिकार ससुराल वालों का वैसा ही हो जाता था जैसा कि खरीदे हुए पशु पर। उसे दासी की तरह आजीवन इच्छा या अनिच्छा से विजेताओं के घर उचित-अनुचित सेवा करनी पड़ती थी। उसे प्रतिबंध में रहना और आदेश मानना पड़ता था।

उस प्रथा के ध्वंसावशेष अभी तक बचे हुए हैं। बारातियों की लंबी-चौड़ी सेना सज-धज कर पहुँचती है, तरह-तरह की फरमाइशें करती है। बेटी वालों की सारी खुशहाली दहेज के नाम पर लूट ली जाती है चाहे उनके पास पीछे के लिए गुजारे भर को कुछ न रहे। चाहे ऋण लेना पड़े पर ससुराल वालों को इसमें सहानुभूति जताने की आवश्यकता नहीं होती। वे राजी-बेराजी से हाथ लगे उतना निचोड़ लेते हैं। यह कृत्य-कौतुक हो जाने के उपरांत भी लड़की को सताते रहते हैं कि वह बाप, भाइयों को अपनी कष्ट कथा सुनाए और जो कुछ अधिक से अधिक उनसे रोकर, गिड़गिड़ाकर और खुश करके ले सकती है वह बाद में भी लाती रहे। न ला सकने पर कितनी ही लड़कियों को परित्यक्ता बनना पड़ता और आत्महत्या कर लेने के लिए विवश होना पड़ता है।

अब तक जिस प्रकार भी विवाह होते रहे उस बात को भूल जाना चाहिए। भूल का, अनुपयुक्तता का प्रायश्चित्त करना चाहिए। आगे के लिए सुधार किया जाना आवश्यक है। विवाह पूर्ण सादगी के साथ हों, उसका भार कन्या पक्ष पर तो किसी प्रकार पड़ना ही नहीं चाहिए। कुछ खर्च करना भी हो तो बेटे वाले करें क्योंकि अनायास ही कन्या रत्न हाथ लगा है। उन्हीं को कृतज्ञ एवं विनम्र भी होना चाहिए।

विवाहोत्सव बिना खर्च किन्तु धूमधाम से ही करने का मन हो तो

गायत्री परिवार के किसी यज्ञायोजन में इसे कर लेना चाहिए । शांतिकुंज में भी वैसी व्यवस्था है जिसमें दोनों पक्ष वहाँ ठहरकर तीर्थयात्रा का आनंद भी लें और विवाह के विधिपूर्वक संपन्न होने के उपरांत अपने-अपने घर लौट जायें । यहाँ दान-दहेज या वस्तु प्रदर्शन का कोई अड़ंगा खड़ा नहीं करने दिया जाता है ।

दहेज और जेवर दोनों ही समाप्त हों !

प्रतीत यह होता है कि लड़के वाले लड़की वालों से दहेज माँगकर लुटेरों जैसा अनैतिक कृत्य करते हैं, पर बारीकी से देखने पर प्रतीत होता है कि लुटेरे और निर्मम कसाई का अपयश ओढ़ने पर भी उनके पल्ले वैसा कुछ पड़ता नहीं जैसा कि आमतौर से समझा जाता है कि उनने कोई बड़ी संपत्ति कमाई होगी और घर भरने जैसी संपदा अर्जित कर ली होगी ।

होता यह है कि बेटी वाले को बरात के स्वागत-सत्कार में उतना खर्च करना पड़ता है मानों स्वर्गलोक से उतरकर कोई देवता बड़ी मंडली बनाकर उनके यहाँ पधारे हों अथवा किन्हीं बहुत बड़े अफसरों, मिनिस्टरों का स्वागत-सत्कार करने में अपनी हैसियत से अनेक गुना अधिक लुटाना पड़ रहा हो ।

जो सामान वर पक्ष को दिया जाता है उसमें नकदी का अंश तो थोड़ा ही होता है । अधिकांश पैसा जेवर, कपड़े, फर्नीचर, उपहार आदि के रूप में देना पड़ता है । वह सभी देते-लेते समय तो आकर्षक प्रतीत होता है परंतु नकदी के रूप में उसकी एक कानी कौड़ी भी नहीं उठती । वह कबाड़ निरर्थक घर की जगह घेरता है, क्योंकि आवश्यक उपयोग की वस्तुएँ तो विवाह से पूर्व भी लड़के के पास रहती हैं, उन्हें फेंका थोड़े ही जाता है । फिर नया कबाड़ जो घर में भर गया, वह कुछ दिन में ऐसे ही टूट-फूट कर बर्बाद हो जाता है ।

बाजे-गाजे, आतिशबाजी, घुड़सवारी, बरात का मार्ग व्यय आदि में खपने वाली राशि भी कम नहीं होती है, जो देखते-देखते समाप्त हो जाती है । दूसरे दिन के लिए तो उसकी चर्चा तक शेष नहीं बचती । ऐसी दशा में लड़के वाले को जो खर्च करना पड़ता है वह उससे कहीं अधिक होता है जो कि लड़की वाले से नकदी के रूप में दहेज में मिलता है ।

दहेज लेने के बदले लड़की वाले को वधू के लिए कीमती जेवर और

कपड़े चढ़ाने पड़ते हैं । सोना कितना मँहगा है । थोड़े से जेवर बनवाने पर भी वे इतनी रकम खोजते हैं, जितने में एक छोटा-मोटा उद्योग लग सकता है, फिर इन जेवरों की जिंदगी भर रखवाली करनी पड़ती है । परिवार में जिसके पास कुछ कम है, उनमें ईर्ष्या जग पड़ती है । चोर-डाकुओं का निरंतर भय बना रहता है । इन दिनों घरों में पूँजी के रूप में जेवर ही देखे जाते हैं । चोर-डाकू उनका सुराग लेते रहते हैं और जिन घरों में कुछ छत्ते का शहद दीखता है उसी पर चढ़ दौड़ते हैं । इस कार्य को घर के लोग ही चर्चा का विषय बनाते और उचक्कों तक उसकी खबर पहुँचाने में सहायता करते हैं । यह रंजिश आगे चलकर किसी बड़ी विपत्ति का कारण भी बन सकती है ।

स्मरण रहे खर्चीली शादियाँ यदि बंद करनी पड़ीं, तो दहेज लेना ही नहीं, जेवर चढ़ाना भी बंद करना होगा । उपहारों और प्रदर्शनों को पूरी तरह हटाना होगा । संसार भर में शादियाँ सादगी के साथ घरेलू उत्सव की तरह थोड़े से इष्ट मित्रों और सगे-संबंधियों की उपस्थिति में ही हो जाया करेंगी । वर्तमान धमाल तो ऐसा विघातक, उपहासास्पद और खर्चीला है कि सभ्य समाज का हर विचारशील सदस्य उसकी निंदा किए बिना न रहेगा ।

आर्थिक समृद्धि की बात इन दिनों हर क्षेत्र में सोची जा रही है । इसके लिए मात्र आजीविका बढ़ाना ही एक उपाय नहीं है, उसी के समानांतर दूसरा उपाय यह भी है कि अनावश्यक खर्चों में पूरी तरह कटौती की जाय । ऐसी मदों में विवाह को नितांत सादगी से संपन्न करने के रिवाज को प्रश्रय देना चाहिए और खर्चीली शादियाँ न करने के लिए अपने समूचे संपर्क क्षेत्र में प्रचार करने से लेकर दबाव देने तक का उपक्रम अपनाते हुए समझदारी का वातावरण बनाना चाहिए ।

शादियों से जुड़ी हुई एक दूसरी अवांछनीयता जेवरों की है । उनका उपयोग दैनिक रूप से तो कहीं कोई बिरले ही करते हैं, पर विवाह-शादियों में सम्मिलित होने वाली महिलाएँ जेवरों से सज-धज कर जाती हैं । इसके अनेक दुष्परिणाम हो सकते हैं । गरीबों का मन ललचाता है और वे भी अपने घर वालों पर वैसा ही प्रबंध करने के लिए दबाव डालती हैं, न मिल पाने पर हीनता का अनुभव करती हैं । अकारण मानसिक विक्षोभ उत्पन्न होता है ।

जेवर घिसते और टूटते-फूटते रहते हैं । दो चार बार मरम्मत के लिए जाने पर मजूरी और मिलावट के उपक्रम में लगी पूँजी का अधिकांश भाग

ऐसे ही बर्बाद हो जाता है । अर्थविज्ञान का सर्वमान्य नियम है कि पूँजी को किन्हीं उत्पादक कामों में घूमते रहना चाहिए, उसे बटोर कर अवरुद्ध नहीं करना चाहिए । जेवरों में पूँजी जाम हो जाती है और उसका ब्याज या अन्य रूप से जो प्रतिफल मिलना चाहिए, उससे वंचित रहना पड़ता है । जेवरों की परिपाटी में यह हानि होना प्रत्यक्ष है ।

कन्या के अभिभावक, स्वजन-संबंधी विवाह के अवसर पर लड़की को कुछ भेंट, उपहार देना चाहते हैं । इसमें कोई बुराई नहीं है, पर अच्छा यही है कि जो कुछ देना हो वह नकदी के रूप में दिया जाय और उस सबको एकत्रित करके पंचवर्षीय बचत-पत्र खरीदने में लगा दिया जाय । इस प्रकार लगाया हुआ धन प्रायः पाँच वर्ष में दूना, दस वर्ष में चौगुना, पंद्रह वर्ष में आठ गुना और बीस वर्ष में सोलह गुना हो जाता है । इस प्रकार जमा की हुई राशि को बैंक उद्योग में लगाती है और उससे अनेक को रोजो-रोटी का सुयोग बनता है । जमा करने वाला तो घर बैठे निरंतर अपना मूलधन बढ़ाता ही रहता है ।

बेटी वाले का दहेज और बेटे वाले का जेवर यदि नकदी के रूप में जमा किया जाय और उस संयुक्त राशि को नववधू के नाम स्त्री धन के रूप में जमा कर दिया जाय तो उसके सहारे भविष्य की निश्चिंतता भी रह सकती है और वह जमा पूँजी आड़े वक्त में कभी भी काम आ सकती है । धूमधाम में बर्बाद होने वाली राशि बच सके तो इससे संबंधित दोनों ही पक्षों में आर्थिक स्थिति की बर्बादी होने से बच जायगी । कहना न होगा कि हर भारतीय परिवार में शिक्षा, स्वास्थ्य और सभ्यता के नए आधार खड़े करने के लिए बहुत कुछ किए जाने की आवश्यकता है । उसे तभी जुटाया जा सकता है जब खुशहाली का सिलसिला चले ।

आलस्य और प्रमाद पिछड़ेपन के जन्मदाता हैं । गरीबी उन्हीं की अनुकृति है । आजीविका बढ़ाने के लिए जहाँ अन्य उपार्जन उपाय कारगर हो सकते हैं, वहाँ सबसे सुनिश्चित यह है कि हर व्यक्ति परिश्रम में अपना सम्मान समझे और पूरी तरह व्यस्त रहकर अपनी सर्वतोमुखी प्रगति का पथ प्रशस्त करे ।

विवाह शादियों के साथ जुड़े हुए उपहार या आदान-प्रदान इस मंतव्य को साथ लिए होते हैं कि वर-वधू को अधिक आमोद-प्रमोद का अवसर

मिले । देखा जाता है कि इसी आधार पर लड़कों की ढूँढ़-तलाश होती है । लड़कियों का मानस भी आराम-तलबी और विलासिता में रंगे रहने की इच्छा-आकांक्षा का बन जाता है । होना यह चाहिए कि विवाह के उपरांत वर-वधू मिल-जुलकर अधिक परिश्रम करने में उत्साह प्रदर्शित करें और सर्वतोमुखी प्रगति का पथ प्रशस्त करें । सादा जीवन उच्च विचार का सिद्धांत तभी निभता है जब कठोर श्रम करते हुए अभ्युदय के वास्तविक आधार खड़े किए जायें । विवाह के अवसर पर परामर्श, आशीर्वाद इसी स्तर के दिए जाने चाहिए कि परस्पर स्नेह-सूत्र में बँधा हुआ युग्म संयम, सहकारिता और उत्कर्ष के लिए एक दूसरे के कंधे से कंधा मिलाकर काम करे और अधिक मनोयोगपूर्वक अधिक परिश्रम करने में इस मिलन की सफलता सार्थकता समझे ।

विवाह वर-वधू के बीच अविच्छिन्न सहयोग, सद्‌भाव के संस्थापन-संवर्द्धन की प्रक्रिया तो है ही, साथ ही दो परिवारों के बीच भाव भरी सद्‌भावना स्थापित करने का भी आधार है, पर यह सब बन तभी पड़ता है जब स्वार्थ सिद्धि का कोई प्रसंग बाधक बनकर खड़ा न हो । शादियों में बरती जाने वाली खर्चीपन, धूमधाम और छीना-झपटी उस मूल उद्देश्य को ही समाप्त करती है जिसके लिए कि विवाह की आवश्यकता समझी गई और उसकी सफलता की आशा की गई ।

समझें और समझाएँ

विवाह दो आत्माओं को मिलाने, एक दूसरे के सहयोगी और सच्चे सहचर बनकर आत्मकल्याण के मार्ग में दृढ़तापूर्वक चलने की शक्ति देने वाला संस्कार है, उसमें लेन देन का अर्थ संस्कार न होकर पशु व्यापार होगा ।

—रामकृष्ण परमहंस

जब लड़कों की तरह लड़कियों को भी शिक्षा और जीविका की सुविधाएँ निकल आयेंगी, तो दहेज प्रथा भी बिदा हो जायेगी ।

—प्रेमचन्द

मुद्रक: युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा